हिन्दी निबन्ध

राजकमल मूल्यांकन माला

हिन्दी निबन्ध

प्रभाकर माचवे

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली • बम्बई इलाहाबाद नई दिल्ली

भूमिका

इस माला का नाम मूल्यांकन है। 'आवश्यकता है मूल्यो के मूल्यांतरीकरण की।' फ्रेडरिख नीट्ज़शे ने बहुत पहले ललकारा था। और उनके बाद आये मार्क्स साहब, जो लिख गए है कि "देअर आर नो वैल्यूज़ लेफ्ट; देअर इज़ ओनली प्राइस!" अब कोई मूल्य नही बचे है, केवल बचा है मोल-भाव। जिनकी ऐसी सरल व्यापारी श्रद्धा हो कि पूँजीवादी युग की प्रखर भट्टी मे सब-कुछ सूख गया और मुरझा गया है, उनके प्रति हम क्या कहे! परन्तु हॉ, अभी भी मनुष्य मूल मे कोई मनुष्यत्व का मूल्य शेष है, और हम उसी नई मनुष्यता को प्रतिष्ठापित करने वाले है, ऐसा सोचने वाले और उस पर चलने वाले कुछ लोग हैं। प्रस्तुत पंक्तियो का लेखक उन्ही मे से एक है। मूल्यो का विचार इसी दृष्टि से हम करते हैं। यहाँ कसौटी हो रही है 'हिन्दी निबन्ध' की।

ध्यान रहे कि कई लेखको ने आलोचनात्मक निबन्ध और विशुद्ध निबन्ध को एक ही मान लिया है, और हिन्दी के बड़े-बड़े समालोचक-प्रवर इस गलती से बरी नही हैं। अतः यहाँ स्पष्ट कर दूँ कि प्रस्तुत पुस्तक मे परिभाषा का पहला प्रकरण होगा ही, परन्तु फिर भी निबन्ध-लेखको की नामावली मे अगर कोई समालोचनात्मक निबन्धकार छूट गए हो तो उसमे मेरा कोई दोष नही। निबन्ध की मेरी व्याख्या सीमित है। मैने भी इस दिशा मे कुछ कदम बढाए थे, यद्यपि उसकी चर्चा अपने मुँह करना मियॉ मिट्ठू बनने के बराबर है। और हिन्दी मे यह आत्म-प्रशंसावाद विपुल मात्रा मे होने पर भी अभी मै उससे बचना चाहता हूँ।

उद्धरणो के लिए तो यह लेखक बदनाम है ही। यहाँ एक और सही। आद्यनिबन्धकार माइकेल द मौतेन के निबन्ध-संग्रह के आरम्भिक वाक्य यहाँ दूँ:

"Reader, lo here a well-meaning book. Had my intention been to forestal and purchase the world's opinion and favour, I would have safely adorned my self quaintly, or kept a more grave or solemn march I desire therein to be delineated in mine own genuine and simple and ordinary fashion, without contention, art or study, for it is my self I portray"[१]

१. *Address from the Author to the Reader : Essays John Florio's anslation, 1603.*

"पाठक, देखो, इस किताब के पीछे इरादा भला है। अगर मेरा इरादा होता कि मै दुनिया-भर की सम्मतियाँ और आशीर्वाद पहले ही जमा कर लूँ या खरीद लूँ, तो मैं अपने-आपको और भी अजीबोगरीब तरीके से सजाता; या बहुत गम्भीर बनकर, लम्बा चेहरा किये, आपके सामने से परेड करता हुआ निकलता। मेरी इच्छा है कि मुझे सच्चे, सीधे, सहज, साधारण रूप में ही जाना जाय, उसमे कोई लाग-लपेट, दिखावा-बनावा, छल-छन्द या नकलीपन न हो; क्योंकि मै अपनी ही तसवीर जो उतारना चाहता हूँ।"

मै समझता हूँ एक सच्चे निबन्धकार की भी वृत्ति इसी तरह की होती है। ऐसी दशा मे उसका मूल्याकन भी केवल सहृदय ही कर सकता है। व्यक्तिगत निबन्धो की यह विशेषता अभी भारतीय भाषाओ मे प्रस्फुटित नये साहित्य मे सभी ओर दिखाई नही देती। कही वे यह अपनी पूरी बहार पर हैं और कहीं उनका अंकुरित होना दिखाई दे रहा है। होना तो यह चाहिए कि हमारी पाठ्य-पुस्तको मे बजाय एक ही भाषा के निबन्ध रखने के, विभिन्न भाषाओं की सर्वश्रेष्ठ निबन्ध-कृतियो का सकलन रखा जाय, जिससे कि साहित्य का विद्यार्थी पूरे भारतीय साहित्य का स्वरूप समग्रता से ग्रहण कर सके। परन्तु उतनी परिपक्व अखिल भारतीय दृष्टि सास्कृतिक मामलों मे अभी हमे विकसित करनी है। उसका अन्दाज़ा इस पुस्तक के कुछ पृष्ठो मे मिलेगा। मैने १४ नवम्बर १९५४ और उसके अगले सप्ताह के 'हिन्दुस्तान' मे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय कविता पर; 'आलोचना' के उपन्यास-अक मे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय उपन्यास पर; इस पुस्तक मे निबन्ध पर और 'आजकल' जून '५५ मे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय नाटक और रंगमंच पर विस्तार से लिखा है। भारतीय कहानी और आलोचना पर मेरे दो लेख अभी प्रकाशित होने हैं। यह मिलाकर एक समग्र कल्पना मिल सकती है।

निबन्ध क्या है और हिन्दी-निबन्ध और निबन्धकारो के विकास और सद्यस्थिति पर इस पुस्तक में विवेचन है। अग्रेज़ी, मराठी और कुछ भाषाओं की निबन्ध-प्रगति की चर्चा आगे के पहले अध्याय में हुई है। यहाँ हम सक्षेप मे अमरीकी, फ्रेन्च और रूसी साहित्य मे आधुनिक निबन्ध की प्रगति का परिचय करायेंगे, और बाद मे भारतीय भाषाओ मे निबन्ध-साहित्य की प्रगति पर विचार करेंगे। अंग्रेज़ी के बाद अमरीकी साहित्य में निबन्ध एक ललित, स्वतन्त्र, मनोरजक साहित्य-प्रकार के नाते विकसित हुआ है। फ्रास, जर्मनी, इटली, नार्वे, स्वीडन और अन्य देशो में निबन्ध अधिकतर साहित्य-कला-समीक्षा तक सीमित रहा है। आलोचनात्मक निबन्धो की वहाँ अधिक भरमार है। रूस में तो इस प्रकार के व्यक्तिगत निबन्ध के लिए कोई स्थान ही नहीं है। या तो रिपोर्ताज़ है,

या फिर तर्क कर्कश आलोचनात्मक निबन्ध। रूसी साहित्य के पृष्ठपोषक और अन्धानुयायी हिन्दी-प्रगतिवादियो मे भी कोई लघु-निबन्धकार नही। और वही हाल, कमोबेश, जहाँ-जहाँ सोवियत 'सन्तन के पैर' पड़े है, वहाँ का है।

अमरीका। एडीसन के 'स्पेक्टेटर' मे जैसे त्रिपोली के एक काल्पनिक नागरिक के पत्र छपते थे, वे वाशिंगटन आयर्विंग ने लिखे थे। और वे आलिवर गोल्डस्मिथ के 'दि सिटिजन आफ दि वर्ल्ड' के काल्पनिक चीनी नागरिक वाले पत्रों की तरह से थे। 'अमरीका मे निबन्ध को लोकप्रिय बनाने में इमर्सन, पो, आलिवर वेंडेल होम्स और जेम्स रसेल लावेल के नाम मुख्य हैं। इमर्सन की भाँति दूसरे आदर्शवादी निबन्धकार थौरो का प्रभाव भी प्रकृति-वर्णनात्मक निबन्ध लिखने वालो पर पड़ा है। थौरो की पुस्तक 'वाल्डेन' इस दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसमे लेखक का प्रकृति के प्रति तादात्म्य और स्वावलम्बन का स्वानुभूत बडी ईमानदारी और स्पष्टता से चित्रित हुआ है। जौन मूर और जौन बरोज इस क्षेत्र मे दो ख्यातनामा लेखक हो चुके है और डोनाल्ड क्यूलरास पिएटी के 'अलमैनेक फार माडर्न्स' मे बहुत ऊँचे दर्जे का गद्य-लेखन मिलता है। चार्ल्स लैम्ब की शैली से अमरीका मे सैम्युएल मैक्कॉर्ड क्राथर ने लिखा है, और उनकी दो पुस्तके 'दि जटल रीडर' और 'ह्यूमनली स्पीकिंग' की सर्वत्र प्रशंसा हुई। इनकी तुलना मे विलियम हैजलिट की शैली के निबन्ध फ्रैंक मूर कॉल्बे के मिलते है। उनकी 'इमैजिनरी आब्लिगेशन्स' उनकी शैली का सबसे अच्छा नमूना है। निबन्ध-लेखिका एग्नेस रेप्लियर ने अपने चिन्तन-प्रधान निबन्धो मे बहुत अच्छा नाम पाया, पर उनकी विशेषता 'बिल्ली' या 'चाय'-जैसे निबन्धो मे ज्यादा अच्छी तरह से दिखाई देती है। उनकी 'बुक्स एण्ड मेन' की भाँति 'आठ दशक' नामक संस्मरणात्मक आत्म-चरित की पुस्तक भी निबन्ध का आनन्द देती है। निबन्ध के इतिहास में और विख्यात अमरीकी नाम हैं: क्लैरेंस डे, क्रिस्टोफर मोर्ले, ई० बी० वाइट और जेम्स थर्बर, डब्ल्यू० सी० ब्राउनेल, पाल एल्मेर मोर; और उन सबसे बढ़कर जार्ज सैंटायाना। इन सब निबन्धों में सबसे बडा गुण जो दिखाई देता है, वह है लेखकों का जनतन्त्रात्मक दृष्टिकोण। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के उद्‌घाटन के लिए निबन्ध से अधिक उपयुक्त कोई माध्यम नहीं हो सकता। हर लेखक इसे लिखने की कोशिश कर सकता है, चाहे हर लेखक उसमे मौतेन की इयत्ता न प्राप्त कर सका हो।

इन सब लेखकों में भारतीय आदर्शवाद के निकटतम होने से जिनका प्रभाव हमारी चिन्तन-शैली पर, विशेषतः अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगो पर अधिक पड़ा, वे है इमर्सन और थौरो। "कांट, कार्लाइल, अफलातून और नव्य-अफला-

तूनवादियो के साथ-साथ पौर्वात्य दर्शन तथा प्रोटेस्टेण्ट उदारता मे यान्की लोगो की साधारण समझदारी मिलाकर राल्फ वाल्डो इमर्सन ने अमरीका मे अपना एक अतीन्द्रिय विचार-लोक बनाया।" इमर्सन के आदर्शवाद की आगे चलकर चाहे व्यक्तिवाद मे परिणति क्यो न हुई हो, यह बात निश्चित है कि अमरीका को पीढियो तक स्वावलम्बन, सुस्पष्ट तर्क करने की क्षमता और निरन्तर आत्म-शोधन के लिए यदि किसी के निबन्धो ने बल दिया तो वे इमर्सन के ही निबन्ध थे। कला, प्रेम, वर्तुल, स्वावलम्बन आदि ऐसे ही उनके निबन्ध है जिन्हे विश्व के अभिजात साहित्य (क्लासिक लिटरेचर) की कोटि मे सहज ही रखा जा सकता है। उनमे सार्वजनीनता है और मानव-मात्र की मौलिक अच्छाई मे गहरे विश्वास के पुनर्दर्शन होते है। धार्मिक न होकर भी वे निबन्ध आध्यात्मिक है, किसी भी सम्प्रदाय या विचार-निकाय के अधीन न होकर वे व्यक्ति-मात्र की मौलिक स्वातन्त्र्येच्छा के लिए चिरन्तन दीप-दर्शक का कार्य करते है। थौरो के वाल्डेन और अन्य निबन्धो मे स्वावलम्बन का जैसा सुन्दर रूप हमे मिलता है वह अन्यत्र पश्चिमी विचारको मे कम पाया जाता है।

फ्रासीसी साहित्य मे निबन्ध का अधिक विकास हुआ है। सोलहवी सदी से एक प्रकार की दुर्दमनीय स्वातन्त्र्येच्छा फ्रास के साहित्य मे मिलती है। राबेले ने इस प्रकार की स्वाधीन-चिन्ता का सूत्रपात किया, जो मौतेन मे और उभरी। उसके Essais इस प्रकार के चिन्तन के बहुत अच्छे नमूने हैं। मनुष्य-स्वभाव के अलग-अलग चित्रो का संग्रह मानो उसने अपनी कुशल लेखनी से किया और एक नई भाषा-शैली का सूत्रपात किया। इसी शती के धार्मिक आध्यात्मिक लेखको मे पास्कल का नाम लिया जा सकता है। उसकी Pensees (जिस पर विस्तार से आल्डस हक्सले ने लिखा है) मे अन्तर्धारा है तो आस्तिक्य की, परन्तु उसका विचार-वैभव बहुत सम्पन्न है, साकेतिकता उसमें सर्वाधिक है। अठारहवीं शती मे मातेस्क के L'Esprit des lois (१७४८) मे और Lettres Persanes मे इसी प्रकार के हल्के-फुल्के सामाजिक व्यंग्य हैं। वाल्तेयर का कलम-कुल्हाडा, सशक्त व्यंग की मूठ से सज्जित, हर सामाजिक दंभ का भंजन करने के लिए चिर-प्रस्तुत था। रूसो के निबन्ध समाज-विज्ञान के ग्रन्थ जैसे, अधिक गम्भीर रूप मे हैं, दिदेरो तो विश्व-कोशकार ही था। रूसो के Les Confessions और Emile मे एक नये प्रकार की सहजता और सामाजिक बनावट का आमूल विरोध हमें दिखाई दिया है। यह एक प्रकार से भावुकता और सवेदनशीलता का पुनराख्यान था। उन्नीसवी शती मे मादाम दा स्ताएल और शातोब्रियाँ की आत्म-कथात्मक दैनिकियो के लेखन मे व्यक्तिगत निबन्ध के हमें दर्शन मिलते है। वैसे Vanrena'gnes के निबन्धो की

चर्चा भी साहित्य के इतिहास मे की जाती है।

रोम्याॅ रोला निबन्धकार से अधिक जीवनीकार, उपन्यासकार और कला-लोचक है। परन्तु अति-आधुनिक काल मे एलॅ (Alain) का नाम प्रधान है। La Depecte de Rouen नामक दैनिक पत्र मे रॉडेकल सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख के नाते उसने लिखना शुरू किया। यह एक छोटा-सा प्रादेशिक पत्र था। परन्तु इसमे क्लेमेस्यू और जौरे-जैसे बडे साहित्यकार लिख चुके थे। एलॅ ने पास्कल के 'एक देहाती के पत्र' मे उठाये हुए प्रश्नो का जैसे उत्तर देना शुरू किया उसने जनता की ओर से आवाज बुलन्द की। वहाॅ के एक पार्लामेंट-मेम्बर ने उसे एक वजीफा दिलाने में मदद की। एलॅ दर्शन का अध्यापक बना। वह प्रत्येक अधिकारिक सत्ता-मात्र का विरोधी है। वह चाहे राजनीतिक हो या सास्कृतिक—तानाशाही से वह बहुत क्रुद्ध है। उसकी सर्वोत्तम पुस्तक है Mars,en la Guerre jugee (जनता युद्ध के बारे मे क्या सोचती है ?)। उसका मत है कि एक भले आदमी को फौजी वर्दी पहना दो, वह खूनी और हत्यारा जरूर बन जायगा। युद्ध मे हिसा सिर्फ बुरी नहीं है, विरोधी पक्ष के लोग आज नहीं कल मरेगे ही। परन्तु युद्ध मे सबसे बडी बुराई यह है कि मनुष्य को अपनी स्वतन्त्र इच्छा एक व्यक्ति या एक गुट के हाथो मे सौप देनी पडती है। मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण उसकी मृत्यु है।

Les Idees et lesages मे एलॅ ने सच्चे निबन्धकार की भॉति मन को स्वैर भटकने दिया है। हर बाहर की घटना पर टिप्पणी करते हुए वह बढता जाता है। आलोचक डेनिस सौरात् के अनुसार "एलॅं का सबसे बडा दोष यह है कि वह रुकता ही नही। यह दोष प्रायः कई निबन्धकारो मे पाया जाता है। दैनिक में तो वह प्रतिदिन एक पृष्ठ का लेख लिखता रहता है, और गये पचास वर्षों से नित्य वह यही काम करता आ रहा है। इन सब निबन्धो मे से उत्कृष्ट चुनकर निकालना बडा कठिन काम है।"

वामपक्षियो को एलॅं, उसी प्रकार से दक्षिणपक्षियो का बडा निबन्धकार है ऑरी ब्रे मॉ। उसने फ्रास की धार्मिक भावनाओ के साहित्य का इतिहास (Histoire litteraire du sentiment religieux en France) लिखा है। वह एक प्रकार का रहस्यवादी या मर्मी है। वैसे और गम्भीर विषयो पर लिखने वाले निबन्धकारो मे मैरितेन, जूलियन बेदा, सार्त्र, काक्टयू आदि कई है। परन्तु वे सब समाज-वैज्ञानिक या दार्शनिक कोटि के लेखक है।

निबन्ध के क्षेत्र मे अमरीका और फ्रास की साहित्यिक देन के बाद जब हम *सोवियत रूस* के इतिहास की ओर मुडते है तो हमे बहुत आश्चर्यचकित होना पडता है कि क्रात्युत्तर समाज-व्यवस्था मे जहॉ बडे विकास की चर्चाएँ हैं, साहित्य

का यह रूप, जिसमे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता सर्वाधिक चाही जाती है, वहाँ केवल कुचला हुआ ही नही, प्रत्युत नही के बराबर है। जो भी बडे नाम इस क्षेत्र मे लिये जा सकते है वे क्रान्ति-पूर्व रूस के ही है : ग्रिबोयेदेव, बेलिन्स्की, ताल्स्ताय या अन्य। तुर्गनेव-जैसे स्केचेज बाद मे पढने को नही मिलते। ताल्स्ताय और दस्ताफेएस्की की तुलना ही नही हो सकती बाद के लेखको से। गोर्की और चैखव कथाकार है, निबन्धकार नही।

गोगोल के जमाने से ही रूसी गद्य मे उपदेशात्मकता बढने लगी थी। गाचारोफ, दस्ताफेएस्की, हेरजेन आदि को पोलेफोय और बेलिन्स्की ने बढाया। पर बेलिन्स्की की आलोचना मे समाज-सुधार की प्रधानता थी, कला-तत्त्व को कम महत्त्व दिया जाता था। हमारे साहित्य मे द्विवेदी-युग के जो मूल्य थे, मेरे विचार मे सोवियत-साहित्य अभी उसी प्रायोजनिकता से मुक्त नही हो पाया है। उनके अनुसार साहित्य वही है जो सामाजिक उपयोगिता से निर्णीत हो। अब सामाजिक उपयोगिता शासकीय मतावली से निर्णीत होती है, और यो कल का प्रगतिशील आज प्रतिक्रियावादी या इससे उलटे भी सहजसिद्ध किया जा सकता है। तर्क का दुधारा खाँडा शिरच्छेद करने को या राजसी गौरव प्रदान करने को सदा उद्यत है ही। सबसे पहले १९१५ मे प्रकाशित, १९४५ के पाँचवे सस्करण में मारिस बेअरिंग के 'आउट लाइन आफ सोवियत लिटरेचर' मे पृष्ठ १४४ पर लिखा है—
"Thus it is that from the beginning of Russian Criticism down to the present day, a truly objective criticism scarcely exists in Russian literatrue Aesthetic criticism becomes a political weapon 'Are you in my camp ?' If so, you are a good writer 'Are you in my opponents' camp ?' Then your god-gifted genius is mere dross "[१]

इस प्रकार की वृत्ति जहाँ होती है अच्छे व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य को व्यक्त करने वाले साहित्य का निर्माण कम ही हो पाता है। निबन्धकार के नाते अगर आज सर्वश्रेष्ठ रूसी लेखक कौन है ऐसा प्रश्न किया जाय तो उत्तर पाना कठिन है। 'सोवियत लिटरेचर' मे लघु उपन्यास छपते है, प्रवास-वर्णन छपते है, आलोचनात्मक लेख छपते है, कविताएँ भी प्रसगनिष्ठ होती है, पर व्यक्तिगत निबन्ध उसमे कभी नही होते। जार्ज रिवी ने अपने सोवियत-साहित्य के 'सर्वे' मे कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और आलोचना पर अलग-अलग अध्याय लिखे है, पर लघु निबन्ध-जैसा कोई साहित्य-प्रकार गम्भीरता से वहाँ वह शायद रिपोर्ताज और जर्नलिज्म की कोटि मे

आ जाता हो। रूस की माया रूस ही जाने, इसलिए इस विषय को यहीं समाप्त करें।

मेरी यह पुस्तक 'हिन्दी निबन्ध' पर कोई विद्वत्तापूर्ण खोज ग्रन्थ नहीं, न अन्तिम शब्द होने का मेरा दावा है। मेरा प्रयास है कि कुछ तथ्य, जो मुझे अपने पढने-लिखने के सिलसिले मे हस्तगत हुए, मैं अन्य सहृदयों तक पहुँचाऊँ। साहित्य का सत्य किसी एक व्यक्ति या गुट की मोनोपोली नही है, ऐसा मेरा विश्वास है, क्योकि वह अन्ततः जीवन का सत्य है, जो नित्य गतिशील, निरन्तर भूयमान है। गति का आधिक्य कभी-कभी स्थिति का आभास पैदा करता है, पर जैसे मैने अपनी निबन्धो की पुस्तक 'खरगोश के सींग' मे कहा है आभास को सचाई मान लेने का हमारा बाल-स्वभाव सार्वजनीन है।

नई दिल्ली
१५-४-५५

—प्रभाकर माचवे

क्रम

१

निबन्ध की परिभाषा और विकास

: १ :

'निबन्ध' शब्द के आपटे द्वारा रचित संस्कृत-कोश में निम्न बारह अर्थ दिये हैं : (१) बाँधना, जोडना; (२) लगाव, आसक्ति[1], (३) रचना, लिखना; (४) कोई साहित्यिक टीका या कृति[2]; (५) संग्रह; (६) संयम, बाधा, रोक; (७) मूत्रावरोध; (८) शृङ्खला; (९) सम्पत्ति का दान, पशुओं का यूथ या द्रव्य का भाग किसी की सहायता के लिए बाँध देना[3]; (१०) निश्चित धन; (११) नींव, उत्पत्ति, (१२) कारण, हेतु। इसीका पर्यायवाची अंग्रेज़ी शब्द 'एसे' प्राचीन उत्तरी-फ्रांसीसी शब्द 'एसाई' से निकला और उसका अर्थ है 'प्रयत्न', किसी विषय पर गद्य में छोटी साहित्यिक रचना।

हमारे साहित्य में निबन्ध एक आधुनिक साहित्य-प्रकार है जो बहुत-कुछ अंग्रेजी के 'एसे' से प्रभावित है। संस्कृत में गद्य-प्रबन्ध, टीकाएँ या आख्यायिकाएँ मिलती हैं; परन्तु आधुनिक अर्थ वाला निबन्ध नहीं। इस आधुनिक निबन्ध को जिसे अंग्रेज़ी समालोचक डॉ० जानसन ने 'मन की मुक्त भटकन' (लूज़ सैली ऑफ़ दि माइण्ड) कहा था, किसी चौखटे में बाँधना सम्भव नहीं है। वैसे हिन्दी में निजात्मक या आत्मनिष्ठ और परात्मक या वस्तुनिष्ठ और फिर दोनों के विचार-प्रधान और भाव-प्रधान ऐसे भेद करके निबन्ध की व्याख्या करने का यत्न किया गया है; परन्तु उत्तम निबन्ध में इस प्रकार का विभेद करना दुष्कर ही नहीं, विफल भी है। जैसे एक उत्तम भाव-गीत (लिरिक) में यह कहना कठिन है कि कवि कहाँ तक निजात्मक है और कहाँ वह 'स्व' का कोटर छोड़कर सर्वात्मक हो जाता है, उसी प्रकार उत्तम सफल निबन्ध में यह सीमा-रेखा स्पष्ट नहीं,

१. भगवद्गीता १६-५।

२. प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धं चक्रे—वासवदत्ता।

३. भूर्या पितामहोपात्ता निबन्धो द्रव्यमेव वा—याज्ञवल्क्य।

क्योंकि निबन्ध का उद्देश्य ही मन का स्वच्छन्द विचरण, रस-ग्रहण, सौन्दर्य-शोध और आनन्द-बोध है, और वही अनुभव गप-शप के ढंग पर या मित्रों के साथ विश्रब्धालाप के ढंग पर निबन्धकार निवेदित करता है। उसकी कल्पना को छूट है कि इस 'बतकही' मे या पाठको के सम्मुख एक प्रकार के सशब्द स्वगत-भाषण मे या आत्मरहस्योद्घाटन मे, वह एक बात से दूसरी बात जो उसे सहज सूझ जाय उसकी चर्चा करे। उसका हेतु श्रोता या पाठक का मनः-प्रसादन-मात्र है। उद्बोधन या नीत्युपदेश, ज्ञानवर्धन या सव्यंगकशाघात उसके साधन हो सकते है, साध्य नही—यद्यपि निबन्ध के विकास मे आरम्भिक काल मे कई बार कई लेखको ने इन साधनो को ही साध्य मान लिया था ऐसा ज्ञान पड़ता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "यदि गद्य कवियो की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।" गद्य का वह सुविकसित और परिमार्जित-स्वरूप जिसमे लेखक के व्यक्तिगत भाव-विचारो की झाँकी हमें मिल सके, निबन्ध ही है। जे० बी० प्रीस्टले ने 'निबन्ध' शीर्षक के आलोचनात्मक लेख मे निबन्ध के स्वरूप का सुन्दर विवेचन किया है। उसने कहा है—"सच्चे निबन्ध-कार के लिए कोई विषय आवश्यक नही, या यो कहे कि वह दुनिया का कोई भी विषय उठा सकता है।—वह विषय। जिसमे चाहे जैसे झुकाने और चाहे जिस तरफ मोडने की शक्ति भरपूर रहती है, क्योंकि उस निबन्ध के द्वारा वस्तुतः वह अपना व्यक्तित्व ही प्रकट करना चाहता है। इस कारण जिस विषय का उसे बिलकुल ध्यान न हो उस पर भी वह निबन्ध लिख सकता है, और वह भी खुशी से। वह निबन्ध मे केवल अपने अज्ञान की चर्चा करेगा। सच्चा निबन्ध किसी रहस्यालाप या प्रेम से किये हुए सलाप की भाँति होता है, और सच्चे निबन्धकार की पाठक से जो हित-वार्ता होती है वह चतुराई से भरी और पाठक को प्रभावित करने वाली होती है। वह हर शब्द अपने हृदय के अन्तराल से बोलता है, उसका लेखन अन्तःस्तल की आकुलता व्यक्त करता है।"

लघुता इस प्रकार के आधुनिक वैयक्तिक निबन्ध का प्रधान गुण है। दीर्घ बृहत्कथा जाकर इस युग में छोटी गल्प या लघु-कथा बनकर आई; लम्बे-लम्बे खण्डकाव्य या 'ओड' जाकर इस युग में चुतुर्दशियाँ या सानेट अधिक लोक-प्रिय बने; पंचांकी या त्र्यंकी नाटकों के स्थान पर एकांकिकाएँ अधिक लोकप्रिय बनीं। उसी प्रकार प्रबन्ध की अपेक्षा लघु निबन्ध अधिक प्रचलित होने लगे। करीब ३७० वर्ष पूर्व मौंटेन् (१५३३-९२) इस साहित्य-प्रकार का जन्मदाता माना जाता है। बेकन के निबन्ध जहाँ प्रगल्भ, सूत्रमय, सुभाषितप्राय और ज्ञान के

महासागर पर उठने वाली तरंगों के समान थे, वहाँ मॉटेन् के निबन्ध दुनिया के उपवन में घूमते हुए जमा किये कुछ पुष्पो के समान है। मॉटेन् एक साहित्य-प्रेमी, कला-भक्त फ्रांसीसी न्यायाधीश था। उसने अपने इस प्रकार के स्फुट लेखन को विनय से essais अर्थात् 'प्रयत्न' नाम दिया। डॉ० मूरे के कोश में इसीलिए 'एसे' की परिभाषा दी है—"जिसमे किसी भी विषय का पूर्णत्व से विचार नही किया गया है ऐसा किसी भी आकार का अपूर्ण लेखन।"

बेकन और मॉटेन् के बाद प्रायः एक शती तक इस विषय में कोई प्रगति नहीं हुई। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि निबन्धकार किसी भी भाषा के साहित्य के अन्य विभागो के सम्पूर्ण विकास के बाद परिपक्वावस्था मे उत्पन्न होता है। लार्ड बेकन का काल मुख्यत. पद्य-युग था। अतः वहाँ निबन्ध का विकास न होना समझ मे आता है। 'दि एज ऑफ रीज़न' के बाद अंग्रेजी साहित्य में आत्माविष्करण की भावना बढती गई। समाचार-पत्रो का विकास भी इसी काल में हुआ। गोल्डस्मिथ, ॲडीसन, स्टील, लैम्ब, हैजलिट आदि अंग्रेजी-निबन्धकारों की परम्परा इसी कारण से बनती गई। ॲडीसन आदि आरम्भिक निबन्ध-लेखको पर भी समाचार पत्र के लिए लिखे जाने वाले त्रुटित लेखन की छाया अधिक स्पष्ट है। मॉटेन् ने अपने निबन्धो का विषय विशद करते हुए जो कहा था कि "इन निबन्धो मे मैने अपनी तस्वीर खुद बनाई है।" वह बात आधुनिक निबन्धकारों मे अधिक स्पष्टता से दिखाई देती है, जैसे स्टीवन्सन्, गार्डिनर, ल्यूकस, चेस्टरटन्, बेलाक, राबर्ट लिंड, जेरोम के जेरोम आदि। निबन्ध में विषय और शैली आत्म-चिन्तनपरकता से इस प्रकार एक-प्राण हो जाते हैं कि सफल निबन्ध की कसौटी केवल उसका 'चार्म' या मनमोहकता, या चित्त-रंजकता ही है। लिंड के अनुसार निबन्धों में 'विज़डम इन ए स्माइलिंग मूड' (अर्थात् हँसते-खेलते हुए सयानेपन की बातें) और 'एन एलेगेंट पीस ऑफ़ नान्सेन्स' (सुन्दर बकवास) कहा है। इसीलिए किसी समीक्षक ने आधुनिक निबन्ध को हल्की-फुल्की हवा मे तैरने वाली सुन्दर बेकार चीजें माना है।

इस प्रकार निबन्ध की परिभाषा एक दुष्कर कार्य है। जिसका स्वरूप निश्चित न हो, उसकी सुनिश्चित परिभाषा कैसी? १९४८ में प्रकाशित 'ए बुक ऑफ़ इंग्लिश एसेज' की भूमिका में डब्ल्यू० ई० विलियम्स ने लिखा है कि "स्वल्पतम परिभाषा निबन्ध की यह है, कि यह गद्य-रचना का एक प्रकार है, जो बहुत छोटा होता है और जिसमे केवल वर्णन नही होते। कभी-कभी निबन्ध-कार अपनी बात को सिद्ध करने के लिए प्रसंगो का आश्रय ले सकता है, कभी उपन्यासकार की भाँति पात्र-सृष्टि भी कर सकता है, परन्तु उसका मूल उद्देश्य

कथा कहना नहीं है। निबन्धकार का मुख्य कार्य सामाजिक, दार्शनिक, आलोचक या टिप्पणीकार-जैसा होता है।"

ए० सी० बेन्सन ने 'दि आर्ट ऑफ दि एसेइस्ट' नाम से एक महत्त्वपूर्ण निबन्ध लिखा है, जिसके अन्त मे लेखक ने कुछ ऐसी बाते कही है जो कि निबन्धकार के कर्तव्य को अच्छी तरह व्यक्त करती है। उसके अनुसार निबन्धकार जीवन की समग्रता का अनुभव और आनन्द ग्रहण करना चाहता है; कवि की भाँति जीवन की विराट्ता या सूक्ष्मता या सुन्दरता से ही उसे प्रयोजन नहीं होता। निबन्धकार जीवन की आभा से सन्तुष्ट है, दीप्ति से सन्तुष्ट है, पूर्ण प्रकाश या ज्वाला की अनुभूति उसका इष्ट नहीं। अतः निबन्धकार रोमांस-लेखक के विपरीत है। निबन्धकार जीवन का तटस्थ द्रष्टा है, वह व्यर्थ के स्वप्न-लोक मे अपने-आपको खो देना नही चाहता। निबन्धकार हमारा सहप्रवासी है, सफर का साथी है। निबन्धकार की मनोदशा चाहे जो हो, उसकी जीवन को देखने की दृष्टि पचासों प्रकार की हो, केवल एक चीज निबन्धकार नही कर सकता और वह है जीवन की अवहेला, तिरस्कार या उपेक्षा। चाहे पूर्वग्रह-दूषित होकर या अज्ञानवश अन्य के अनुभव के प्रति अप्रीति निबन्धकार व्यक्त नहीं कर सकता, क्योंकि सारी रसानुभूति का आधार ही यह है कि हम आत्मौ-पम्य भाव से भावन करें। हमे बिना सहृदयता के किसी चीज के बारे मे सोचने का अधिकार नही है। जीवन मे, हम जो सोचते है उसमे कितना अधिक वैविध्य भरा है। इस प्रकार से निबन्धकार जगत् और जीवन को न तो इतिहासकार की भाँति देखता है, न दार्शनिक की, न कवि की, न उपन्यासकार की; और फिर भी निबन्धकार मे इन सबका गुण होता है।

: २ :

निबन्ध के प्रकार या शैलियों की चर्चा से पहले निबन्ध अन्य साहित्य-प्रकारों से किम प्रकार से भिन्न है यह जान लेना उपयुक्त होगा। निबन्ध गीत या मुक्तक ऊर्मि-काव्य (लिरिक) से भिन्न है। न केवल इसलिए कि गीत या कविता पद्यबद्ध है परन्तु इसलिए भी कि निबन्धकार अधिक सामान्य बुद्धि के घरेलू, यथार्थवादी स्तर से अपने पाठकों से गप-शप या कानाफूँसी करता है; कवि कल्पना के पंखो पर बैठकर अधिक अयथार्थ भूमि पर अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना करता है।

तो आप कहेंगे कि निबन्ध गद्यकाव्य के निकट का साहित्य-प्रकार होगा। परन्तु वह भी सही नहीं है। क्योंकि गद्यकाव्य प्रायः गम्भीर, अत्यन्त संवेदन-

शील (High stsaung) हृदय के उद्गार होते है, निबन्ध हल्के-फुल्के, हास्य-व्यंग विच्छित्ति से शोभित, बातचीत के तौर पर होते हैं। गद्यकाव्य मे हास्य प्रायः रसापकर्षक माना जाता है। गद्यकाव्य व्यक्तिगत पत्र की भाँति अत्यन्त आत्म-निष्ठ साहित्य-प्रकार है। परन्तु निबन्ध अधिक वस्तुनिष्ठ लेखन है।

निबन्ध और गल्प मे भी बडा अन्तर है। गल्प मे किसी घटना, वातावरण, चरित्र या उद्देश्य-विशेष की मौलिक अन्विति अपेक्षित होती है। निबन्ध मे वैसा बन्धन नहीं है। निबन्ध मे मन की मुक्त भटकन होने से यह छूट है कि लेखक किसी सुनियोजित डिजाइन मे न लिखे। निबन्ध मे बतकही है, पर आख्यायिका नहीं, यद्यपि आधुनिक कथा मे कथानक कम-कम होकर संज्ञा-प्रवाह का चित्रण तथा उसके द्वारा स्वभाव-रेखा या चरित्र-चित्रण-प्रधान हो गया है। इसलिए बहुत बार यह आधुनिकतम नवकथा निबन्ध के बहुत निकट का साहित्य-प्रकार जान पडती है, परन्तु फिर भी दोनो साहित्य-प्रकारो से पाठको की अपेक्षाएँ बहुत भिन्न होती हैं। कथा पढ़कर पाठक को जो भावात्मक तृप्ति होती है उसकी तुलना मे निबन्ध से होने वाली वैचारिक संतुष्टि भिन्न प्रकार की है। एक कारण यह भी हो सकता है कि कहानी मे जो तटस्थता अपेक्षित है या उसमे जिस प्रकार को वस्तुनिष्ठ दृष्टि कहानीकार की होती है, वैसी बात निबन्धकार के लिए सम्भव नही। निबन्ध का गहरी वैयक्तिकता और आत्मनिष्ठता से सम्बन्ध है। यदि किसी रूखे विषय पर व्यवस्थित तखमीने बनाकर वाद-विवादयुक्त खण्डन-मण्डनात्मक तर्क प्रस्तुत किये जायँ तो वह निबन्ध की कोटि मे शायद ही आ सके, यानी वह आत्म-निबन्ध या ललित निबन्ध न रहकर एक प्रकार का परीक्षा मे लिखा जाने वाला प्रश्नोत्तर-प्रबन्ध हो जायगा। वह एक रचनात्मक साहित्य-प्रकार नहीं रहेगा; इस दृष्टि से गल्प में किये जाने वाले प्राकृतिक या बाह्य वस्तुओं के वर्णनो से निबन्ध के वर्णन तोलनीय हैं। गल्पकार जब चुनाव करता है तो उसका उद्देश्य स्पष्ट है : कहानी के हेतु या अन्तिम परिणाम को परिपुष्ट करना। वह यह सब वर्णन सिर्फ मिर्च मसाले की तरह, साधन के रूप मे काम मे लाता है; साध्य उसका कुछ और है। निबन्धकार का लक्ष्य इस तुलना मे बहुत भिन्न है। गल्पकार की तरह वह अपने-आपको भूलकर पूरी तरह अपने पात्रो मे खो जाय, ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। निबन्धकार की सबसे बडी कठिनाई या विशेषता यही है कि वह अपने-आपको पूरी तरह भुला ही नहीं सकता। सर्वत्र, सर्व विषयों में, सब समय वह अपने-आपको साथ लिये चलता है। यह लेखक का निजत्व बहुत प्रधान है। गुलाबराय ने अपने 'काव्य के रूप' मे पृष्ठ २३५

पर लिखा है—"पुस्तक मे लेखक अपने व्यक्तित्व को ओझल कर सकता है, किन्तु निबन्ध मे यह व्यक्तित्व छिपाया नही जा सकता। लेखक जो-कुछ लिखता है उसको अपने निजी मत के रूप मे अथवा अपने निजी दृष्टिकोण से लिखता है। उसके पीछे उसके निजी अनुभव की प्रेरणा दिखाई देती है। यदि लक्षण या व्यजना के विषय मे कोई ऐसा लेख लिखा जाय जिसमे केवल शास्त्रीय मत ही दिया गया हो तो वह किसी पुस्तक का अध्याय बन सकता है, निबन्ध न होगा। निबन्ध तभी होगा जब कि वह लेखक के किसी निजी दृष्टिकोण से देखा गया हो।"

इस विवेचन से ऐसा जान पडेगा कि निबन्ध की निकटतम साहित्य-शैली गीति-काव्य की स्फुट तथा मुक्तक अभिव्यक्ति या 'लिरिक' ही सकती है। यह बात सही है कि भाव-कविता के मूल में जो लयबद्धता, संगीतात्मकता आदि गुण हैं उन्हे यदि निकाल दिया जाय और उसी त्रुटित भावोच्छ्वास को गद्य के रूप मे लिख दिया जाय तो बहुत-कुछ लघु निबन्ध के रूप के निकट आ जाय। परन्तु भाव-गीत और निबन्ध मे अन्तर है। भाव-गीत के विषय जैसे सीमित है, उसकी रस-निष्पत्ति की पद्धति भी प्राय. पूर्व-निश्चित-सी है। उसमे 'वैलक्षण्य' (एलिमेंट ऑफ़ सरप्राइज़) की कमी है। निबन्ध की इस दिशा मे अनेकमुखता बहुत स्पष्ट है। न तो उसके विषय की कोई सीमा है, न उसकी शैलियों की कोई मर्यादा। वस्तुत. रचयिता के मन की अमर्याद भटकन निबन्ध मे जितनी आसानी से पूरी हो सकती है, वैसी गीति-काव्य मे नहीं। गीति-काव्य एक सुमधुर स्वरो वाले पक्षी के समान है। जिसके आकाश-चरित्व और गान-स्वच्छन्दता के बाद भी एक नीड जैसे सुनिश्चितप्राय है। परन्तु निबन्ध का कोई नीड़ नहीं। निबन्ध घुमन्तू, कबायली तथा यायावर, प्रकार का चिर-प्रवासी साहित्य-प्रकार है। घाट-घाट का पानी उसने पिया है, कई सराय और होटलो मे वह ठहरा है। मगर उसका मंजिले-मकसूद अन्ततः आत्म-कथन या अपने निकटतर व्यक्ति को लिखे जाने वाले पत्र के समान है। उसमे लेखक की रुचि-अरुचि भी मिश्रित है।

ऊपर जब पत्र-लेखन या स्वगत-भाषण की बात कही गई तब यह न समझा जाय कि निबन्ध केवल 'सालीलाकी' है या 'रिपोर्ताज' मात्र है, या यह केवल संस्मरणात्मक रेखाचित्र है या वह यात्रा-वर्णन है। वह यह सब-कुछ सम्मिश्रित रूप मे होने पर भी, उससे ऊपर एक सुन्दर रसायन-सा है। उसकी इससे अधिक कोई सुनिश्चित परिभाषा दे पाना असम्भव है। बेन्सन के शब्दो मे हम कह सकते है कि "साहित्य मे नामकरण तथा साहित्यिक अभिव्यञ्जनाओ के रूपों का वर्गीकरण करने की प्रवृत्ति बहुत गड़बड़ मे डालने वाली और

उलझाने वाली होती है। यह सब नामकरण या वर्गीकरण केवल सुविधा के लिए किया जाता है। यह कहना कि साहित्य रूढ़ लीको और टाइपो के अनुसार ही चले, कोरा पण्डिताऊपन है। इसका भावार्थ इतना ही है कि साहित्य एक बड़ी शक्ति है, जो चाहे जिस प्रवाह मे बहती है। कला का वर्गीकरण केवल इन प्रवृत्तियो और प्रवाहों का वर्गीकरण है। सारी कला के पीछे विस्मय की भावना प्रधान होती है, और एक प्रकार का केन्द्रित ध्यान का स्थिरीकरण (ॲरेस्टेड ॲटेन्शन)। यह आवश्यक नहीं है कि यह स्थिरत्व केवल सौन्दर्य से ही घटित होता है। कई बार यह केवल औचित्य, अद्भुतता, सम्पूर्णता, प्रभावशाली प्रयत्न आदि के कारण भी हो सकता है, जैसे कोई आदिम निवासी एक आधुनिक नगर को देखकर चकित हो जाय। यह आश्चर्य केवल सौन्दर्य-बोध के कारण नहीं है, जैसे बच्चे तोते की आँख और बोली को देखकर विस्मय, आह्लाद, औत्सुक्य और न जाने किन-किन विभावो से अभिभूत हो उठते है। इस प्रकार की प्राथमिक और अतर्क्य भाव-सामग्री से निबन्धकार का पाला पडता है, और इसी मे उसकी सफलता भी निहित है कि वह कहाँ तक और कैसे उसका उपयोग करता है।"

: ३ :

निबन्ध के प्रकार कौन से हैं? जितने लिखने वाले और जितनी उनकी मनोभूमिकाएँ, उतनी पद्धतियाँ हो सकती हैं। इस प्रकार निबन्ध के प्रकार अनन्त हो सकते है। पर सुविधा के लिए निबन्धो को कुछ प्रकारो मे आलोचको ने बाँधने का यत्न किया है। श्री ठाकुरप्रसादसिंह की पुस्तक 'हिन्दी-निबन्ध और निबन्धकार' की भूमिका मे पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहा है—"जनतन्त्र का ज़माना है, छापे की मशीनो की भरमार है। कह सकने की योग्यता रखने वाले हर भलेमानस को किसी-न-किसी विषय पर कुछ-न-कुछ कहना है, हर छापे की मशीन को अपना पेट भरने के लिए कुछ-न-कुछ छापना है। सो राज्य-भर के विषयो पर निबन्ध लिखे जा रहे है। कहाँ तक कोई सबका लेखा-जोखा मिलाए। सभी विचार किसी-न-किसी निबन्ध-शैली मे लिखे जाते हैं। जब कार्लाइल ने कहा था कि निबन्धो को देखकर किसी साहित्य की गहराई का अनुमान किया जा सकता है तो निश्चय ही उसने हर गद्यबद्ध रचना को निबन्ध नहीं माना था। उस महान् विचारक के मन में ऐसी गद्य-रचनाएँ थीं जिनमे केवल प्रलाप नहीं होता, केवल उथले विचारों का संकलन नहीं होता, बल्कि जिनमे गम्भीरतापूर्वक कार्य-कारण की शृङ्खला का ध्यान

रखते हुए विचार निबद्ध किये जाते है और उन निबद्ध विचारों की रीढ लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है। ये दो ही बाते निबन्ध की जान है। उनमें या तो विशुद्ध ऊहापोह-मूलक चिन्तन हो और या फिर लेखक का अपना व्यक्तित्व प्रधान हो उठा हो। निबन्ध मे कभी एक बात प्रधान हो उठती है कभी दूसरी, पर किसी-न-किसी रूप में ये दोनो रहती अवश्य है। जिस साहित्य में ऐसे निबन्ध नही होते उनको बहुत समृद्ध साहित्य नही कहा जा सकता।"

इस प्रकार निबन्ध का शैली की दृष्टि से विभाजन असम्भवप्राय हो जायगा। श्री गुलाबराय ने अपने 'काव्य के रूप' मे पृष्ठ २३७ पर निबन्धो को चार विभागो मे बाँटा है—(१) वर्णनात्मक (डिस्क्रिप्टिव), (२) विवरणात्मक (नैरेटिव), (३) विचारात्मक (रिफ़्लेक्टिव), और (४) भावात्मक (इमोशनल)। अपने इस चौकोर विभाजन को समझाते हुए गुलाबराय जी ने और उलझा देने वाली टिप्पणी दी है। आप लिखते हैं—"वर्णनात्मक निबन्धो का सम्बन्ध देश से है, विवरणात्मक का काल से, विचारात्मक का तर्क से, और भावात्मक का हृदय से। यद्यपि काव्य के चारो तत्त्व 'कल्पना-तत्त्व, रागात्मक तत्त्व, बुद्धि-तत्त्व और शैली-तत्त्व' सभी प्रकार के निबन्धों मे अपेक्षित रहते हैं तथापि वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धों में कल्पना की प्रधानता रहती है। विचारात्मक निबन्धो मे बुद्धि-तत्त्व को और भावात्मक निबन्धों मे रागात्मक तत्त्व को मुख्यता मिलती है। शैली-तत्त्व सभी मे समान रूप से वर्तमान रहता है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक दोनों ही प्रकार के निबन्धों में कहीं विचारात्मकता की और कही भावात्मक की प्रधानता हो सकती है। विचारात्मक तथा भावात्मक का भी मिश्रण होना सम्भव है।"

यानी इस सारी बात मे शब्दों के पर्यायों के हेर-फेर के बाद जो बात समझ में आती है वह इतनी ही है कि निबन्धो के ऐसे भेद करना सचमुच में कोई अर्थ नही रखता। मनुष्य मे कल्पना, तर्क, भावना, विचार सभी कुछ जिस प्रकार समन्वित होता है, निबन्ध मे भी उनका अलग-अलग खण्डशः विभाजन असम्भव है। निबन्ध एक अन्विति है। वह व्यक्तिनिष्ठ वाङ्मय-प्रकार है। फिर भी आलोचकों ने विचारात्मक निबन्धो के : "समास-शैली (जैसी आचार्य शुक्लजी की) और व्यास-शैली (जैसी श्यामसुन्दर दासजी की)" तथा भावात्मक निबन्धो की धारा, तरंग और विक्षेप शैलियाँ वर्णित की हैं। "विक्षेप और प्रलाप-शैली मे मात्रा का ही अन्तर होता है" ऐसा भी कहा गया है। और हास्य-व्यंग के निबन्धो को कुछ लोग एक स्वतन्त्र विधा मानते हैं। कई लोग तो भाषा-शैली के अनुसार कुछ निबन्धो को

संस्कृत-बहुल और कुछ निबन्धो को उर्दू-बहुल कहते है। हिन्दी की एक निबन्ध-पुस्तक की भूमिका मे विद्वान् लेखक ने हिन्दी-भाषी लेखको के निबन्ध और "हिन्दी-क्षेत्र के बाहर भी हिन्दी राष्ट्रभाषा पद का महत्त्व स्वीकार कर अनेक विद्वानो और लेखको ने हिन्दी-निबन्ध लिखे, जिनमे सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, काका कालेलकर, नलिनीमोहन सान्याल आदि प्रमुख है।"[१] इस प्रकार के अहिन्दी मातृ-भाषा-भाषियो के निबन्धो मे अन्तर किया है। जनार्दन-स्वरूप अग्रवाल ने अपनी छोटी पुस्तक 'हिन्दी मे निबन्ध-साहित्य' मे पृष्ठ ८२ पर कहा है—"आदर्श रूप मे जितने लेखक उतनी ही शैलियाँ, इसीलिए कोई-कोई समालोचक विद्वान् भावात्मक, उपदेशात्मक, विवरणात्मक, व्यंग्यात्मक, आख्यानात्मक, व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक, आलोचनात्मक, अनालोचनात्मक, गवेषणात्मक, तात्त्विक, तार्किक, ललितकथात्मक तथा न जाने कितने और 'आत्मक्' जोडकर भेदोपभेद बताते ही चले जाते है, तथा कोई पाँच भेद कहते है तो कोई सात, परन्तु मुख्यतया तीन शैलियाँ है।" पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है—"निबन्ध या गद्य-विधान कई प्रकार के हो सकते है—विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक। प्रवीण लेखक इन विधानो का बडा सुन्दर मेल भी करते है।"

मराठी मे 'लघु निबन्ध' शब्द हिन्दी के 'आत्मनिबन्ध' के लिए रूढ-प्राय है। इस सम्बन्ध मे 'लघुनिबन्ध आणि लघुनिबन्धकार' की भूमिका में मि० अ० परब ने विस्तार से विवेचन किया है। अंग्रेजी मे 'शार्ट स्टोरी' (लघुकथा) तो कहते है पर 'शार्ट एसे' नही कहते, बल्कि केवल 'एसे' कहते है। 'एसे' के 'इम्पर्सनल' तथा 'पर्सनल' दो रूप माने जाते है। प्रो० ना० सी० फडके, जो कि इस साहित्य-प्रकार के मराठी मे आद्यजनक है, इसी प्रकार को 'गुजगोष्ठी' (बतकही, कानबात) या 'ललितनिबन्ध' कहते हैं। परब के अनुसार 'ललित' विशेषण 'शास्त्रीय' के विरोध मे विदग्धतायुक्त है। इसलिए 'ललितनिबन्ध' शब्द अतिव्याप्ति-दोष से भरा है। 'लघुनिबन्ध' शब्द मराठी में आधुनिक निबन्ध के अर्थ मे रूढ हो चुका है। जेयसन् के अनुसार "लघुनिबन्ध के विषय का महत्त्व नही है, विषय का प्रतिपादन भी अनिर्बन्ध हो सकता है। उसमें चाहे जो स्वच्छन्दता लेखक बरते, परन्तु रचना सुनिबद्ध, स्थापत्यपूर्ण, संलग्न, एकात्म होनी चाहिए।" विषय-प्रतिपादन में सहृदयता, रसज्ञता, सम्भाषण-चातुर्य, काव्य-दृष्टि, 'विट' या विच्छित्ति, परिहास

१. देखिए 'निबन्ध-संग्रह' : डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० श्रीकृष्णलाल, भूमिका, पृष्ठ २०।

की सूक्ष्म छटा आदि उत्तम निबन्ध के कुछ आवश्यक गुण हैं, जब कि रचना-चातुर्य, भावोत्कटता, रम्य भाषा-शैली तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व का अभाव कुछ प्रधान दोष है।

: ४ :

आधुनिक अर्थ मे जिसे हम निबन्ध कहते है उसके सूत्रपात का श्रेय मॉटेन् नामक फ्रासीसी लेखक को है। मॉटेन् ने सन् १५६१ से लिखना शुरू किया था। उसने अपनी निबन्ध-रचना के सम्बन्ध मे लिखा है कि "माई एसेज आर कान्सबटैन्शियल विथ मी" अर्थात् "मेरे निबन्ध और मै एक ही सामग्री से बने है।" मॉटेन् की निबन्ध-शैली मे जीवनानुभूति के प्रति तादात्म्य तथा तटस्थता का एक साथ दर्शन होता है। श्रेष्ठ कला के लिए ये दोनो गुण एक-से आवश्यक है। कन्हैयालाल सहल का अनुमान है "कि मॉटेन् को बहुत अंशों मे सिसेरो से प्रेरणा मिली होगी जिसने अमूर्त विषयों का सम्भाषण-पद्धति पर चित्रण किया है और वह भी बडी स्वच्छन्दता और वैचित्र्य के साथ। सिसेरो से भी पहले प्लेटो ने जो अपने संवाद लिखे थे उनमे उपन्यास और निबन्ध दोनो के बीज मिल जाते है। प्लेटो के संवादो मे दार्शनिक की शुष्कता नहीं है, उनमे साहित्यकार की प्राणमयी सजीवता के दर्शन सर्वत्र हो सकते हैं। मॉटेन् के निबन्धो मे जो आकर्षण है उसका कारण है उसके व्यक्तित्व की मनोरंजकता, उसका आवेश, उसका सूक्ष्म निरीक्षण तथा तत्कालीन मनुष्यो और उनके रीति-रिवाज़ो से उसका सजीव परिचय।"[1]

मॉटेन् के निबन्धो मे एक चतुर सम्भाषण करने वाला अपनी आत्म-कथा से संस्मरण सुना रहा हो और साथ ही उसमे चिन्तन और नैतिकता की सूक्ष्म पुट हो ऐसा जान पड़ता है। यह मॉटेन् का अपनी विशेष जीवन-दृष्टि के कारण सम्भव हुआ है। उसने अपने निबन्धो मे राजनीतिक अथवा धार्मिक विषयो को नही आने दिया। हडसन ने मॉटेन् के निबन्धों को 'विचार-सूत्र, उद्धरण तथा सस्मरणो की कथा' कहा है। उसने एक सर्वसन्देहवादी दार्शनिक की भाँति दुनिया-भर के विषयो पर अपनी सुभाषित शैली मे अभिव्यञ्जना दी। वर्जीनिया वूल्फ़ के शब्दो मे मॉटेन् ने कभी की अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल अपनी आत्मा को छटपटाती मछली की तरह अपनी रचनाओ मे रख दिया। उसने निबन्ध लिखने के लिए निबन्ध नही लिखे। किसी उद्देश्य-विशेष को लेकर उसने उपदेश का बाना नहीं ओढा। मॉटेन् ने अपने इस

१. 'आलोचना के पथ पर'; मॉटेन्-शैली के निबन्ध, पृष्ठ २९६-२९७।

वैचारिक विद्रोह के प्रेरणा-स्रोतो में रूसो का नाम लिया है।

अंग्रेजी मे वैसे निबन्ध-लेखन की शुरूआत बेकन से मानी जाती है। निबन्धकार के नाते उसकी विशेषता और ही तरह की है। सभी निबन्धों में उसकी अलौकिक बुद्धिमत्ता दिखाई देती है। वह एक अत्यन्त व्यवहार-कुशल व्यक्ति था। अत. उसमे कहीं भी विषयान्तर या आत्मालोचन नही दिखाई देता। उसकी शैली बडी सुगठित और भव्य है, परन्तु उसकी सूत्रमयता को छोडकर वह चिरस्मरणीय नही रहेगी। टामस ब्राउन की काव्यात्मा उसमें नहीं है। एक आलोचक ने उन्हे 'सार्वजनिक जीवन मे भाग लेने वाले भद्र पुरुषों की आचार-उपयोगी पुस्तिका' माना है। फ्रांसिस बेकन के 'एसेज' सन् १५६७ मे प्रकाशित हुए। उसके कई परिवर्द्धित सस्करण १६२५ तक प्रकाशित हुए। उनकी विशेषता थी उनका इतना सक्षिप्त होना और इतना मुद्दे से भरा हुआ होना। वैसे बेकन की ख्याति उसके 'नोवम आर्गेनम' = जैसे लतीनी ग्रन्थो के कारण है। उसमे अरस्तू की संश्लेषणात्मक तथा निगमनात्मक तर्क-पद्धति के बदले अपनी विश्लेषण-विशिष्ट आगमशैली का प्रतिपादन किया—
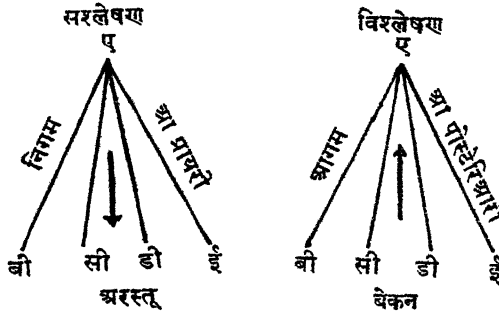
बेकन की शैली का एक नमूना उसके 'ऑफ ट्रैवेल' निबन्ध के आरम्भिक तीन वाक्यों मे देखिए—"Travel, ın the younger sort, ıs a part of educat.on, ın the elder, a part of experıence He that travelleth ınto a country, befoıe he hath entrance ınto the language, goeth to school, and not to travel, that young men travel under some tutor or grave servant, I allow well"

फ्रांसिस बेकन (१५६१-१६२६) के बाद जेरेमी टेसर (१६१३-१६६७) के निबन्ध निबन्ध-संग्राहकों ने दिये है। परन्तु उनमें शैली की कोई विशेषता नहीं दिखाई देती, सिवा इसके कि बेकन की उपदेश-प्रधानता घटकर कुछ वर्णनात्मकता और विशेष रूप से वर्णनो के रूप मे वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ

बढ़ी है। ड्राइडेन (१६३१-१७००) ने साहित्य-शास्त्र पर अपनी ही व्यक्तिगत रुचि को प्रधानता देकर भावाविष्करण प्रस्तुत किया। अब्राहाम काउली (१६१८-१६६७) ने आधुनिक ललित निबन्ध के ढंग पर रचना की। बाह्य जीवन की छोटी-छोटी चीजो को लेकर उन्हे अपनी प्रतिभा का आलम्बन बनाकर उसने अपनी कल्पना-रम्यता की सज्जा से मंडित किया। मिल्टन के अनुसार काउली निबन्धकार से अधिक कवि था, और राबर्ट लिंड तो उसे निबन्धकार मानते ही नही। परन्तु उसका 'ग्रेटनेस' निबन्ध विख्यात है। टेम्पल नामक लेखक ने इतिहास के विषय मे अपने लेख निबन्ध-रूप में व्यक्त किये।

समाचार-पत्रो के विकास के साथ-साथ निबन्ध का महत्त्व भी बढा। जे०डब्ल्यू०मैरिअट ने लिखा है कि "पुराने और नये निबन्ध मे सबसे बडा अन्तर केवल शिल्प का उतना नही, जितना कि मनोभूमि और उसके मूल के सर्वसाधारण विचार-दर्शन का है।" डेफो ने राजनीति को अपना विषय बनाया, इसलिए उसके प्रयत्न असफल रहे, परन्तु उसने 'रिव्यू' की कल्पना शुरू की और उस कल्पना को मूर्त रूप ऑडिसन और स्टील ने दिया। जोजेफ ऑडिसन (१६७२-१७१६) और रिचर्ड स्टील (१६७२-१७२०) ने अपने 'टैट्लर' और 'स्पेक्टेटर' नामक नियतकालिक प्रकाशनो द्वारा कट्टर समाज-सुधार को अपनाया। तत्कालीन सामाजिक दोषों और अन्यायों की कारण-मीमांसा की। इसी कारण वे कई बार नीतिवादी (मौरेलिस्ट) भी माने जाते हैं। संयुक्त परिवार, स्त्री के अधिकार, वर्ग-भेद आदि सामाजिक प्रश्नो पर उन्होने अपनी लेखनी चलाई है। इसी समय से निबन्ध का एक काल्पनिक नायक—व्यक्तित्व निर्माण किया जाने लगा। ऑडिसन की 'सर रोजर दि कौवरली' नामक व्यक्ति-रेखा इसी प्रकार की है। अंग्रेजी मे जो यह हँसी-हँसी मे कहा जाता है कि 'मच कैन बी सेड आन बोथ दि साइड्स' (रामाय स्वस्ति, रावणाय स्वस्ति)। यह वाक्य-प्रयोग पहली बार स्टील के 'आइजैक बिकर स्टाल्ट' नामक परिहासपूर्ण पात्र से उन्होंने कराया। इस प्रकार यद्यपि सामाजिक विषय ऑडिसन और स्टील ने लिये, फिर भी निबन्ध-रचना की साहित्यिक साधना भी उनका प्रधान उद्देश्य था। इसीलिए लेग्वी कॅजैमिया ने उनके विषय मे लिखा है कि "देअर टास्क वाज़ टु मारलाइज़ रिफाइनमेण्ट एण्ड रिफाइन मौरैलिटी।" उन निबन्धो मे सहजता है, परन्तु गठन या संयोजन का अभाव है।

इनके बाद डॉक्टर सैम्युअल जानसन (१७०६-१७८४) ने अंग्रेज़ी निबन्ध को नया विस्तार और गहराई दी। 'टैट्लर' और 'स्पेक्टेटर' पत्रों की परम्परा 'रैम्बलर' और 'आइड्लर' ने आगे चलाई। डॉक्टर जानसन के

विचार परिपक्व थे, बीच-बीच मे परिहास की ओर झुके हुए और आत्मा-लोचन की जिज्ञासा लिये हुए थे। आलिवर गोल्डस्मिथ (१७२८-१७७४) यद्यपि प्रधानतः कवि था, फिर भी उसका भावुक हृदय निबन्धों के रूप में भी प्रकट हुआ है और एक कल्पित चीनी प्रवासी की कल्पना करके उसने अंग्रेज़ी समाज की संकीर्णता पर गहरा व्यंग किया है। 'सिटिजन ऑफ़ दि वर्ल्ड' मे एक उदार मानवतावाद का प्रचार गोल्डस्मिथ ने किया है। उसने औद्योगिक क्रान्ति के बाद के यूरोप और इंग्लैण्ड के नये कडवे विचार-मूल्य अपने निबन्धों में प्रस्तुत किये और वे भी नर्म विनोद के शर्करावगुण्ठन के साथ-साथ।

उन्नीसवी सदी मे निबन्ध का विकास 'एडिनबरा रिव्यू', 'क्वार्टर्ली रिव्यू', 'ब्लैकवुड रिव्यू' आदि मासिकों द्वारा बडी क्षिप्रता से हुआ। गिफर्ड, हंट, हैज़लिट, लैम्ब, डी क्विन्सी, मेकाले-जैसे शैलीकार इन पत्रिकाओ मे लिखते थे। 'एडिनबरा रिव्यू' लिबरल-पार्टी की नीति का समर्थन करता था, जब कि 'क्वार्टर्ली रिव्यू' रूढ़िवादियों का पक्षधर बना। 'लंडन मैगजीन' सुधारवादियो का मोर्चा सँभाले था। इन सभी निबन्धकारो मे अग्रस्थान चार्ल्स लैम्ब (१७८९-१८३४) को मिलता है। उसे 'प्रिंस ऑफ दि एसेइस्ट्स' कहा जाता है। उसके व्यक्तित्व की अव्याज मनोहारिता, शैली की प्रसन्नता और ऋजुता अभी भी मन को मोह लेती है। उसके निबन्ध पढ़कर ऐसा लगता है कि मानो हमे एक मित्र मिल गया हो। उसमे परिहास है, मनमौजीपन है, फिर भी उसके व्यक्तित्व के अन्दर कही एक करुण और विरोधाभासमय दृष्टि स्पष्ट है। व्यक्तिगत जीवन उसका कष्टमय था, परन्तु थैकेरे की भाँति वह सर्वसन्देहवादी कभी नहीं बना। गरीबो के दुःख देखकर उसके हृदय को आँच लगती थी। उसके 'एसेज़ ऑफ ईलिया' का स्वतन्त्र महत्त्वपूर्ण स्थान है। विलियम हैज़लिट (१७७८-१८३०) लैम्ब की भाँति दोनों पक्ष देखने का आदी नही था। वह अपनी ही बात सर्वोपरि करता था। आत्मनिष्ठ दृष्टि से अपने वैयक्तिक मत वह विद्वत्तापूर्ण भाषा मे प्रतिपादित करता। अपनी ही बात कहने की इस पद्धति में रूसो से हैज़लिट की समानता थी। 'आन गोइंग ए जर्नी' नामक निबन्ध मे उसके ये सब शैलीगत गुणावगुण दिखाई देते हैं।

टामस डी क्विन्सी (१७८५-१८५९) अफीमची थे, परन्तु उनके निबन्धो मे निरी पीनक नही है। उनके निबन्धो के पीछे गाढ़ व्युत्पन्नता और असामान्य भाष-प्रभुत्व दिखाई देता है। अब निबन्ध पुनः साहित्यिकता की ओर झुका और सन्दर्भ-प्रचुर लेखन अधिक लोकप्रिय बना। वाशिंगटन आयर्विंग (१७८२-१८५९) का 'स्केचबुक' नामक संग्रह और राबर्ट लुई

स्टीवैन्सन (१८५०-१८६४) के 'वर्जीनिबस प्युरेस्क' नामक संग्रह इस बात के साक्षी हैं। इनमें प्राय. प्रत्येक वाक्य मे एक-न-एक प्राचीन लातीनी या अंग्रेज़ी लेखक का उद्धरण छिपा हुआ है और इस कारण से 'काव्य-शास्त्र-विनोद' के कौतुक का विषय बनकर भी, यह शैली अधिक लोकप्रिय न हो सकी। गद्य-काव्य और वाद-विवाद के विचित्र मिश्रणो मे से कभी-कभी लोक-विलक्षण मत भी दृग्गोचर हो जाते है। शब्दो का ऐसा सुघर शिल्प मन को अभिभूत कर देता है। परन्तु इन सब 'वदतो व्याघातादि' (पैरेडाक्स) के बाद क्या ? स्टीवैन्सेन के जीवनानन्दवादी दृष्टिकोण के कारण निबन्धकार का पुराना निवृत्ति-प्रधान उदासीन चेहरा बदल गया।

इस प्रकार से सत्रहवी सदी से शुरू होकर अंग्रेज़ी निबन्ध को हम बेकन, ऑडिसन, लैम्ब और स्टीवेन्सन के सहारे बीसवी सदी तक समझ सके हैं। अब यन्त्र-युग के साथ-साथ साहित्य और साहित्यकार के प्रश्न भी उतने सरल नहीं रहे है। पहले-जैसे सर्वसुखवादी और 'बोहेमियन' वृत्ति के लेखक नहीं रहे। परन्तु परिहास की सूक्ष्म पुट के साथ व्यंग-भरे ये आधुनिक निबन्ध-लेखक सहज विश्वासी नही हैं। वे प्रत्येक वस्तु को संशयात्मा की भाँति देखते हैं। आधुनिक निबन्ध अब वाद-विवाद-प्रधान हो गए हैं। जी० के० चेस्टरटन (१८७४-१९३६), मॉरिस हिवलेट (१८६१-१९२३), ई० वी० ल्युकास (१८६४ १९३८), आर्थर क्लटन ब्रॉक (१९०६-१९५०), एडवर्ड टामस (१८७८-१९१७), जेम्स एगेट (१८७७-१९४७) और एबर्ट लिंड (१८७९-१९४९) अब नहीं रहे, फिर भी वैशिष्ट्यपूर्ण शैली से उन्होंने अंग्रेज़ी-निबन्ध को बहुत समृद्ध बनाया है। और जो जीवित हैं उनमे हिलेयर बेलाक (१८७०—), ए० ए० मिल्न (१८८२—), हेराल्ड निकलसन (१८८६—), जे० बी० प्रीस्टली (१८९४—), आइवार ब्राउन (१८९१—), आल्डस हक्सले (१८९४—), नेविल कार्डस (१८८९—), वी० एस० प्रिचेट (१९००—) आदि प्रमुख हैं। ए० जी० गार्डिनर ने निबन्ध और रेखा-चित्र का सुन्दर समन्वय उपस्थित किया है। इन आधुनिक निबन्धकारो की विशेषता किस बात मे है ? उनके नये विचारों में, उनकी नई अनुभूतिक्षमता में या उनकी नई विन्यास-शैली मे ? हमारे विचार से उनकी विशेषता इन तीनो बातों में स्पष्ट व्यक्त होती है। क्योंकि नये अनुभूति-विषय हुए बना नये रागात्मक सम्बन्ध और उनके विषय मे नये अनुबोध-सम्बोध निर्मित नहीं हो सकते। और इस नई भाव-विचार-सम्पदा के अनुकूल नई अभिव्यञ्जना-शैली भी निश्चित रूप से विकसित हुई है। अब परिहास का विषय कोई भी वस्तु हो

सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि अमुक विषय पर व्यंग किया जाय, अमुक पर नहीं। यह सब वर्जनाएँ आधुनिक निबन्धकार ने छोड दी है। 'ट्रैजेडी एण्ड दि होल ट्रुथ' निबन्ध मे ऑल्डस हक्सले ने लिखा है—'In recent times literature has become more and more acutely conscious of the whole truth' यही समग्र सत्य-कथन अब के निबन्धकारो को पुराने निबन्धकारों से भिन्न करता है। एक उत्तम निबन्धकार भी क्षण-सत्य में से इस सम्पूर्ण सत्य के साफल्य की झाँकी दिखाता है।

हिलेयर बेलाक इतिहास के विद्वान् है, पर वे छोटे-छोटे विषयों पर व्यंग्य-विनोदमय गद्य-पद्य-रचना भी बहुत सफलता से कर सकते है। चेस्टरटन तो अपने-आपमें एक संस्था है। उनके दुनिया से दूर, अजीबो-गरीब मतवाद सबको चौका देते है। उनके इन सब मूर्ति-भजक विचारो और विरोधाभास-युक्त वाक्य-रचना आदि गुणों को देखकर जान ड्रिक वाटर ने उन्हे 'टाप्सी-टर्वी-फिलासफ़र' कहा था। ई०वी० ल्यूकास मे व्याजोक्तिपूर्ण परिहास-विजल्पित तथा अद्भुत मौलिक कल्पना बहुत दिखाई देती है। राबर्टलिंयड मे अत्युक्ति अधिक है, यद्यपि रूढियो पर कशाघात करने की उसकी प्रवृत्ति चेस्टरटन की तरह से ही है। ए० ए० मिल्न के भद्देसपन के कारण उसकी हास्यपरकता और भी स्पष्ट हो उठी है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि जीवन के उन पहलुओं पर अंग्रेज़ निबन्धकारो ने विशेष प्रकाश डाला है जिनकी ओर साधारणतया हम उपेक्षा से देखते हैं। एक आलसीपन या बेकारी को ही ले लीजिए, स्टवीन्सन का निबन्ध है 'एन ऍपालॉजी फ़ॉर आइडलर्स', चेस्टरटन का 'डिफेन्स आफ़ नान-सेन्स', जे० बी० प्रीस्टली का 'अनडुइंग नथिंग', राबर्ड लिंड का 'दी प्लेज़र्स आफ़ इग्नोरेन्स' और सुन्दर चीन स्थित लेखक लिन युतांग का निबन्ध है 'इन-इम्पार्टेन्स आफ़ लोफिंग'।

संक्षेप में अंग्रेजी-निबन्ध का विकास दर्शनिक-नैतिक उपदेशसूत्रमय गद्य-लेखन से अब एक अपरिभाषेय 'बतकही' तक बहुत स्पष्ट रूप से हुआ है। साहित्य के अन्य अंगों के विकास के साथ-साथ उत्तरोत्तर निबन्ध में भी गुण-विकास होता गया है, उसकी विषय-वस्तु और व्यंजना-शैली दोनो बातों में बड़ा प्रभावपूर्ण और जन-प्रिय सुधार होता गया है। इस विकास-रेखा से भारतीय भाषाओं के साहित्य में इस विकास का अध्ययन करना उपयुक्त होगा मैं मराठी-साहित्य का विस्तार से और अन्य भाषाओं का संक्षेप में एक अध्ययन आगे प्रस्तुत कर रहा हूँ। जिसकी तुलना मे हिन्दी के निबन्ध-विकास को हम अच्छी तरह आँक और परख सकेगे।

: ५ :

मराठी निबन्ध-साहित्य बहुत समृद्ध है। विल्सन ने मोल्स्वर्थ के मराठी-अंग्रेजी-कोश की भूमिका मे कहा है कि "१८३१ से १७५७ ईस्वी का काल गद्य का युग था। अध्यापको और अनुवादको ने मराठी भाषा-शैली को समृद्ध बनाया' इस काल-खण्ड मे मराठी अंग्रेजी-साहित्य के सम्पर्क मे आई। कई पत्रिकाएँ निकली और इनका प्रभाव निबन्ध के विकास पर बहुत गहरा पडा। विशेषतः प्रसिद्ध मासिक 'विविध-ज्ञान-विस्तार' (सं० १६२४) और 'निबन्धमाला' (सं० १६३१) का बहुत बडा हाथ निबन्ध-विकास मे रहा है। ये निबन्ध उच्चकोटि के काव्य-शास्त्र-विनोद के सुन्दर नमूने रहे है। इनमे मद्य-पान-निषेध, ऋण-विमोचन, प्रकृति-सौन्दर्य आदि विषय रहते थे। उस युग के प्रमुख निबन्धकार थे कृष्णशास्त्री चिपलूणकर (सं० १८८१ से १६३१), लोक-हितवादी (सं० १८८०-१६४६), गोविन्दनारायण माडगाँवकर, विश्वनाथ-नारायण मण्डलीक आदि। कृष्णशास्त्री चिपलूणकर ने 'अर्थशास्त्र परिभाषा', 'अनेकविद्यामूलतत्त्व संग्रह' आदि अनेक अनुवादित ग्रन्थ लिखे। कृष्णशास्त्री ने 'विचार लहरी' नामक त्रैमासिक पत्रिका का संचालन करते हुए ईसाई-धर्म-प्रचारको का विरोध किया। गोपाल हरि देशमुख या लोक हितवादी ने 'अगम प्रकाश', 'जाति-भेद', 'निगम प्रकाश', 'पानीपत का युद्ध' आदि विचार-प्रवर्त्तक ग्रन्थों के साथ-ही-साथ कई फुटकर निबन्ध भी लिखे। महात्मा ज्योतिष फुले (संवत् १८८४-१६४७) बड़े प्रखर आदर्शवादी और समाज-सुधारक थे। आपने 'गुलामगिरी' (सं० १६५०) 'ब्राह्मणों की चालाकी' आदि ग्रन्थ लिखे। विष्णुश्रुवा ब्रह्मचारी (सं० १८८२-१६६३) का दृष्टिकोण सनातनी था और 'वेदोक्त धर्मप्रकाश' (सं० १६१३) उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। परन्तु यह सब लेखन निबन्ध की पूर्व तैयारी के रूप में था। सच्चे अर्थ मे निबन्ध का आरम्भ विष्णुशास्त्री चिपलूणकर से हुआ। उन्होने अपने विचारो मे पाश्चात्य और पौर्वात्य विचारों का समन्वय प्रस्तुत करना चाहा। 'मराठी साहित्य के इतिहास' के लेखक प्रो० गोडबोले के शब्दों मे विष्णुशास्त्री एक साथ ही हिन्दी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी दोनो ही थे। 'निबन्धमाला' नामक अपनी पत्रिका में उन्होंने अपनी विद्वत्ता, प्रभावशाली शैली और मनोरंजक विषय-प्रतिपादन का सुन्दर संश्लेषण उपस्थित किया। कृष्णशास्त्री और विष्णुशास्त्री इन दो चिपलूणकर-पिता पुत्रो के विषय मे आलोचक ग० त्र्यं माडखोलकर ने लिखा है कि "पिता की सौम्य और प्रसन्न भाषा-शैली का ही विकास पुत्र की 'निबन्धमाला' की प्रौढ़, ओजस्विनी एवं सालंकृत-

भाषा में हुआ।"

चिपलूणकर के बाद मराठी-निबन्ध में वह युग आता है जब बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों समाज-सुधारको और पत्रकारों ने इस साहित्य-प्रकार का अस्त्र की भाँति उपयोग किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक (सं० १९१३ से १९७७) ने जीवन के पचीसवे वर्ष में अपने साथी गोपाल गणेश आगरकर के साथ स्थापित किये हुए पत्र 'केसरी' से इस युग का आरम्भ किया। आगरकर ने सात वर्ष बाद 'सुधारक' पत्र आरम्भ किया। आगरकर ने बुद्धि-वादी समाज-सुधार-विषयक विचारों का प्रवर्त्तन किया। इसी परम्परा मे महादेव गोविन्द रानडे तथा गोपालकृष्ण गोखले आते हैं। परन्तु चिपलूणकर की जो विद्वत्तापूर्ण खोजभरी परम्परा थी, उसमें बैजनाथ काशिनाथ राजवाडे शिवराम महादेव परांजपे (१९२१-१९८४ सम्वत्), चिन्तामणि विनायक वैद्य आदि सभी का इतिहास और मध्य युग का अध्ययन विशेष प्रिय विषय था। परन्तु इन सबका काव्य-शास्त्र-विनोद बहुत-कुछ बौद्धिक साधना का ही कार्य था। तिलक के व्यक्तित्व मे यह बौद्धिकता भाव-जगत् का अंश बन गई। उनकी शैली शिवराम महादेव की तरह से कटु-तिक्त न होकर भी तीखी और पैनी, प्रखर और दो टूक, साथ ही दृढ और तर्कयुक्त थी। नरसिंह चिन्तामणि केलकर तथा विनायक दामोदर सावरकर उसी तिलक-सम्प्रदाय के निबन्ध-लेखक हुए। प्रो० फडके ने कहा है कि सन्० १८८० से १९२५ तक मराठी-निबन्ध का रूप मत-प्रचार के हेतु से लिखे सम्पादकीय का-सा था।

गांधी युग मे इस गम्भीर समाज-शास्त्र-विषयक साहित्यिक-छटायुक्त निबन्ध ने दूसरा ही मार्ग अपनाया और वामन मल्हार जोशी-जैसे तत्त्व-चिन्तक के हाथों वह दर्शन प्रधान बना और मूलग्राही विवेचना करने लगा। आचार्य विनोबा भावे के 'मधुकर'-जैसे संग्रह में, आचार्य भागवत, काका कालेलकर आचार्य जावडेकर, तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री जोशी आदि उसी सर्वग्राही सत्य-शोधक परम्परा-सरणि के आज के उल्लेखनीय महनीय मणि हैं।

परन्तु इस प्रकार के निबन्ध से भिन्न, जिसे साहित्यिक अर्थों में आत्म-निबन्ध कहते हैं, उस हल्के-फुल्के, परिहास और विच्छित्ति से भरे निबन्ध का सूत्रपात श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर के 'सुदाम्माचे पोहे' से होता है। 'साहित्य-बत्तीशी' नामक संग्रह में उनकी वह शैली दिखाई दी जिसमे हास्य के आलम्बन के नाते एक काल्पनिक चरित्र का निर्माण उन्होने किया। बाद मे चिन्तामणि विनायक जोशी ने 'चिमणिराव' के रूप में और ना०धो० ताहिणकर के 'दाजी' के रूप में ऐसे ही अमर हास्यपूर्ण चरित्र निर्मित हुए। परन्तु कोल्हट-

कर-गडकरी के ज़माने तक भी निबन्ध ऑडिसन के ढंग पर चलता था।

निबन्ध को और भी आधुनिक रूप मे यानी गार्डिनर, चेस्टरटन, हिले-भर बेलाक के ढग पर लाने का सारा श्रेय प्रो० ना० सी० फडके, वि० स० खाण्डेकर, डा० वि० पा० दाण्डेकर, अनन्त काणेकर, ना० भ० सन्त, दत्तू बान्देकर, पु० ल० देशपाण्डे आदि लेखकों को है। इन सबमें प्रो० ना० सी० फडके का कार्य बहुत बडा है। अपने 'गुजगोष्टी' (बतकही) संग्रह से आत्म-निबन्ध या ललित निबन्ध को उन्होने मराठी मे रूढ किया। 'नये सेणो' नामक चौबीस प्रातिनिधिक निबन्ध-लेखको के संग्रह की जो हृद्य भूमिका प्रो० फड्के ने लिखी है, उसमे इस निबन्ध-शैली के स्वरूप-विवेचन का बहुत-सा भाग आ गया है। प्रो० फडके के शब्दो मे "पहले निबन्ध पढा जाता था सो उसमे के पाण्डित्य के लिए। निबन्ध का विषय पाठक के लिए महत्त्वपूर्ण था। ' परन्तु नये ढंग के निबन्धो मे विषय का महत्त्व लुप्त हो गया है। मत-प्रचार और पाण्डित्य-प्रदर्शन यह हेतु अब छूट गए है। विषय की अह-मियत अब नही रही। अब पाठक को निबन्धकार के व्यक्तित्व मे अधिक रस है। चतुर और कुशल निबन्ध-लेखक को विषय का ज्ञान भी आवश्यक नही है। बल्कि यों कहे कि किसी एक विषय-विशेष की भी आवश्यकता नही है। आधुनिक ललित-निबन्ध को विषय की मर्यादा नहीं है। आधुनिक निबन्ध बहुत-कुछ संभाषण की शैली पर है और सुहृद्भाव उसकी आत्मा है। आधुनिक निबन्ध मे पाण्डित्य, संकोच और सचेष्ट रचना का भी अभाव रहता है।"

यदि इन सब निष्कर्षों को ध्यान मे रखकर मराठी के ललित निबन्धों के लेखको और उनके कुछ सग्रहों की सूची बनावें तो ये नाम प्रमुखता से सामने आयेंगे—

(१) *प्रो० ना० सी० फड़के* . 'गुजगोष्ठी', 'धूम्रवलयें'; (२) *वि० स० खाण्डेकर :* 'वायु लहरी', 'सायंकाल', 'चादय्योत', 'अविनाश', 'मन्दाकिनी', 'कल्पलता'; (३) *अनन्त काणेकर :* 'पिकली पाने', 'शिंपले आणि मोती', 'तुटलेले तारे', 'राखे तील निरवारे', उघड्या खिडक्या', (४) *ना० म० सन्त :* 'उघडे लिफाफे'; (५) *बा० म० बोरकर :* 'कागदी', 'होदयो', (६) *डॉ० वि० पा० दाण्डेकर :* 'फेरफटका', 'टेकडीवाह'; [(७) *शंकर साठे :* 'काजवे', (८) *दत्तु बान्देकर :* 'नजरबन्दी'; (९) *पु० ल० देशपाण्डे :* 'खोगीर भरती'; (१०) *गो० रा० दोडके :* 'माहेरवाशीण'; (११) *र० गो० सरदेसाई :* 'कागदी विमाने', (१२) *वि० द० सालगॉवकर :* 'किना-यावर',

(१३) *रा० अ० कुम्भोजकर* : 'रस्ते आणि फिरस्ते' इत्यादि ।

मराठी लघु निबन्ध ने इतनी मंजिल तै की है कि तीन वर्ष पूर्व 'अभिरुचि' नामक साहित्यिक मासिक ने एक अपना विशेषांक इसी निबन्ध-प्रकार को लेकर प्रकाशित किया था। यद्यपि उस समय उच्च कोटि का कोई निबन्ध न होने से पुरस्कार किसी को नही दिया गया। संक्षेप मे, मराठी में निबन्ध-विकास की यही कहानी है। वि० स० खाण्डेकर द्वारा लिखित एक उत्तम मराठी-निबन्ध का अनुवाद 'देवनागर' (अंक १) में प्रकाशित हुआ था। खाण्डेकर के एक और निबन्ध 'चांदण्यान्त' का अनुवाद मैंने 'हंस' में प्रकाशित कराया था, सन् १९३९ मे।

: ६ :

मराठी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं मे भी निबन्ध की प्रगति बहुत आधुनिक ही है। मैंने अन्य भाषाओं के निबन्ध के विषय मे जो जाना है वह संकलन-रूप से प्रस्तुत करता हूँ। बंगला में आधुनिक गद्य के जन्मदाता थे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर। डॉक्टर सुकुमार सेन के शब्दो में : "बंगला-गद्य को सब दोषों मे दूर करके, उसका पंगुत्व छुड़ाकर, उसको उच्च श्रेणी के साहित्य का वाहन बनाने का असाध्य-साधन" उन्होंने किया। उनके "पहले के गद्य में या तो शुद्ध दाँत-तोड़ संस्कृत अथवा चलित भाषा के शब्दों का अनुचित बाहुल्य रहता था या दोनो का शोभा-शून्य सम्प्रयोग। विद्यासागर महाशय ने इन दोनों प्रकार के शब्दो के प्रयोग मे ऐसा सामंजस्य स्थापित किया कि उससे भाषा की ओजस्विता भी नष्ट नहीं हुई और रचना का लालित्य भी उसमे आ गया।" ('बंगला-साहित्य की कथा', पृष्ठ १३७)। ईश्वरचन्द्र के सहयोगी अक्षयकुमार दत्त (१८२०-१८८६) ने न केवल ब्राह्म-समाज की पत्रिका 'तत्त्व बोधिनी' का सम्पादन किया, परन्तु 'ब्राह्म वस्तु के साथ मानव-प्रकृति के सम्बन्ध का विचार'-जैसे निबन्ध भी लिखे। १९वी शती के मध्य-भाग मे जिन्होने बंगला-गद्य की प्रतिष्ठा में विशेष सहायता की उनमे राज-नारायण वसु, राजेन्द्रलाल मित्र, ताराशंकर तर्करत्न, राजकृष्ण वन्द्योपाध्याय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा कृष्णकमल भट्टाचार्य मुख्य थे।

परन्तु प्रबन्ध से निबन्ध की ओर बंगला-गद्य को मोड़ने का श्रेय बंकिम-चन्द्र चट्टोपाध्याय (१८३८ ई०-१८९४ ई०) को है। 'बंग-दर्शन' पत्र द्वारा उन्होंने बंगला-गद्य मे समालोचना को प्रतिष्ठित किया, साधारण गद्य की गति ही मोड दी। उनके सहयोगी दीनबन्धु मित्र ने भी उनकी पत्रिका मे लेख

लिखे। अक्षयचन्द्र ने गद्य-रचना मे 'साधारणी' और 'नवजीवन' पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं। इन्द्रनाथ बन्धोपाध्याय, 'बंगवासी' के प्रतिष्ठापक योगेशचन्द्र वसु, 'बान्धव' के सम्पादक कालीप्रसन्न घोष, 'आर्य दर्शन' के सम्पादक योगेन्द्र भूषण विद्याभूषण के नाम बंगला-गद्य-निर्माण के मध्य खण्ड मे लिये जाते हैं।

इनके बाद रवीन्द्रनाथ तथा शरच्चन्द्र वाले रवि-चन्द्र-युग में काव्य और उपन्यास की कोटि का महत्त्व यद्यपि निबन्ध को नही मिला, फिर भी राज-शेखर वसु (परशुराम), रजनीकान्त दास, सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, क्षितिमोहन-सेन, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, अन्नदाशंकर राय, प्रबोधकुमार सान्याल, बनफूल, बुद्धदेव बसु, गोपाल हालदार, सैयद मुज्तबा अली, गुरुदयाल मल्लिक, सत्येन्द्र मजूमदार आदि अनेक लेखको ने निबन्ध-कला को विविध रूपो से सँवारा और अभी भी विकसित कर रहे है।

गुजराती मे आधुनिक काल मे किशोरलाल मश्रूवाला, आनन्दशंकर-बापूभाई ध्रुव, दिवेटिया, भट्ट, 'द्विरेफ', कन्हैयालाल मुन्शी, काका कालेलकर, रविशंकर रावल, नरहरि पारीख, ज्योतीन्द्र दवे, किशनसिह चावडा के नाम निबन्ध-लेखकों मे बहुत आदर और प्रेम के साथ लिये जाते हैं।

उर्दू मे शिबली-जैसे आलोचको और हाली और ग़ालिब-जैसे पत्र-लेखकों के बाद निबन्ध के क्षेत्र मे अबुल कलाम आजाद की अपनी एक शैली मानी जाती है। मुजीब और मिर्ज़ा महमूद बेग का अपना खास रंग है। वैसे 'पितरस' मज़ामीन अपने ढंग के एक थे, अब किशनचन्दर के 'फूल और काँटे' और कन्हैयालाल कपूर के कुछ निबन्ध उस शैली पर चल रहे हैं। रामबाबू सक्सेना के 'उर्दू साहित्य के इतिहास' (गद्य-खण्ड) में इसकी कुछ रूप-रेखा दी गई है।

उड़िया-साहित्य मे गम्भीर निबन्धों के क्षेत्र मे शशिभूषण राय, विपिन-बिहारी राय, जनार्दन महन्थी, रत्नाकर पति, लक्ष्मीनारायण साहू, सिद्धेश्वर होता तथा सरलादेवी प्रमुख है। इनके लेख मुख्यतः दार्शनिक पुट लिये प्रकृति-वर्णन-विषयक होते हैं।

आधुनिक असमिया साहित्य का उत्थान सन् १८८६ से हुआ। निबन्ध-लेखकों मे कृष्णकान्त हांडिकी, बाणीकान्त काकाती और डिम्बेश्वर नियोग साहित्यिक विषयों पर तथा सूर्यकुमार भुइयाँ और वेणुधर शर्मा इतिहास तथा जीवनी-साहित्य लिखते रहे हैं। परन्तु पत्र-पत्रिकाओ मे बिखरे यत्र-तत्र प्रयत्नो को छोड़कर आधुनिक ललित-निबन्ध असमिया मे विकसित नहीं हैं।

जहाँ तक दक्षिण भारत की तीनों भाषाओं का प्रश्न है, पत्र-साहित्य के विकास के साथ-ही-साथ वहाँ निबन्ध-साहित्य भी बहुत विकसित होता गया है। तमिल मे गद्य-साहित्य बहुत पुराना है। ईसा से २००वर्ष पूर्व से 'शिलप्प-धिकारम्' से मिलता है। मध्यकाल में वि० गो० सूर्यनारायण शास्त्रीजी (१८७३-१९०३ ईस्वी) ने तमिल भाषा का इतिहास प्रकाशित किया और तमिल-नाटकों पर 'नाटक-इयल्' नामक समालोचनात्मक ग्रन्थ लिखा। आधुनिक निबन्ध-लेखकों मे 'नवशक्ति'-सम्पादक कल्याणसुन्दर मुदालियर, डॉ० स्वामिनाथ अय्यर, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, विद्वान् टी० पी० मीनाक्षि सुन्दरम् पिल्लई प्रसिद्ध हैं।

तेलुगु भाषा के अभिनूतन उत्थान मे 'साहित्य-समिति' तथा 'नव्य-साहित्य-परिषद्' नामक दो संस्थाओ का सहयोग विशेष रूप से है। परन्तु जहाँ तक निबन्ध का सम्बन्ध है अंग्रेजी-साहित्य से परिचित श्री कुन्दकूरि वीरेश-लिगम् पन्तलु ने पाश्चात्य पद्धति के साहित्य की अभिव्यंजना-पद्धति को अपनाया और तेलुगु के नवीन उद्धार का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अपने समाज-सुधारक विचारो का प्रचार जोरो से किया, जिनके प्रचार मे उन्हे पानगुण्टि तथा चिलकमूर्ति लक्ष्मीनरसिहम् का बडा सहयोग मिला। बीसवी सदी के साथ-साथ नये-नये प्रश्न आन्ध्र-साहित्य के सम्मुख आये। और मोक्कपाटि नरसिह शास्त्री तथा भमि डिपाटि कामेश्वरराय के शिष्ट हास्य, चिन्ता दीक्षितुलु के बाल-सुलभ कथा-लेखन, और राल्लपल्ली अनन्तकृष्ण शर्मा, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण, पुट्टपूर्ति नारायणचारी आदि की समालोचनाएँ निबन्ध के निकटतम आती है परन्तु एक साहित्य-प्रकार के नाते यह पर्याप्त विकसित नही हुआ है।

कन्नड़-साहित्य की प्रकृति तमिल और तेलुगु से अधिक गम्भीर विषयो की ओर है। पुट्टप्पा, मास्ती वेंकटेश आय्यंगार, प्रो० गोकाक, मुगली, आर० वी० जहाँगीरदार, बेटगिरिकृष्ण शर्मा, कोटेश्वर शिवराम कास्ते आदि निबन्ध-लेखकों मे ख्यात है। 'प्रबुद्धकर्नाटक', 'जय कर्नाटक'-जैसे पत्रों से १६२५ ई० के बाद ही कण्ठय्याजी की स्फूर्ति-प्रेरणा से ये रचनाएँ बढी हैं। परन्तु अभी इस शैली का विकास और होना है।

संक्षेप मे, भारतीय भाषाओं के सभी साहित्यो मे आधुनिक ललित निबन्ध अभी एक नया उगा हुआ पौधा है, जो समुचित सिंचन पाने पर अधिक अच्छी तरह विकसित होगा।

: ७ :

शैली क्या है ? इसके उत्तर मे विद्वानो का एक मत नहीं है ? किसी ने शैली को ही मनुष्य कहा है, 'रीतिरात्मा काव्यस्य' के ढंग पर। किसी ने शैली को केवल बदलता हुआ फैशन या ऊपर से पहना जाने वाला कोट माना है। तो किसी के लेखे शैली लेखक-शरीर की त्वचा है, जो उससे अलग नहीं की जा सकती। अभी-अभी कुछ वर्षों पूर्व तक शैली को एक बाह्य वस्तु माना जाता था, और उसे अनुकरणीय या शोध-सुधार करने के योग्य माना जाता था। अब साहित्य मे शैली को इतना ऊपरी-ऊपरी नही समझा जाता। वाल्टर रैले के शब्दो मे "All style is gesture, the gesture of the mind and of the soul Mind we have in common, in as much as the laws of right reason are not different for different minds."[1] यह साधारणीकरण मान्य करके भी रैले मानता है कि शैली मे कुछ ऐसा गुण होता है जो लेखक के व्यक्तित्व से अत्यन्त निगडित है। अत. उसमे से निस्तार नही है ? लेखक अपने लेखन से निलिप्त नही हो सकता। उसी प्रकार से उस लेखक की शैली भी उसकी 'अपनी' विशेषता है। चित्रमयता, नादमयता, अर्थबहुलता, नकार का प्रयोग, ग्राम्य-भाषा का प्रयोग या भदेसपन, स्वच्छन्दता या सुव्यवस्थितता, वक्रता या सादगी, अन्य विचारो की ग्रहण-शीलता, सूक्तिबद्धता, अपने माध्यम पर अधिकार, अपने पाठक या श्रोता का अहसास, प्रामाणिकता, अलंकरण या अलंकरण-हीनता, शील और शक्ति का सौन्दर्य और मर्यादा, शब्द-संचयन, सन्दर्भ-प्रधानता, नाट्य-गुण आदि अनेकानेक गुणो का समाहार है लेखक की शैली। और इसके सबके बाद वह प्रत्येक लेखक की अपनी भिन्न है।

कहने वाले अब भी कहते है कि हिन्दी का कोई रूप अभी स्थिर नही। परन्तु डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा की 'हिन्दी गद्य-शैली का विकास' किताब की भूमिका—'ग्रन्थ के परिचय' मे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था—"हिन्दी-गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर हुए बहुत दिन हो गए। उसके भीतर विविध शैलियो का विकास भी अब पूरा देखने मे आ रहा है।" इस दिशा मे पहला प्रयत्न जोधपुर के पण्डित रमाकान्त त्रिपाठी, एम० ए० ने अपनी 'हिन्दी-गद्य-मीमांसा' में किया था। पर उनका मुख्य उद्देश्य नमूनो का संग्रह-मात्र करना था। परन्तु डॉ० शर्मा ने "भिन्न भिन्न लेखकों की प्रवृत्तियों के स्पष्टीकरण और वाग्विधान की विशिष्टताओ का अन्वेषण" अधिक किया है। तेईस

१. Style, page 127

वर्ष पूर्व लिखी इस भूमिका मे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी के विषय में जो कहा वह आज भी बहुत सही है—"हिन्दी के वर्तमान लेखको मे से कुछ में तो शैली की विशिष्टता उनकी निज की भाव-पद्धति और विचार-पद्धति के अनुरूप अभिव्यंजना के स्वाभाविक विकास द्वारा आई है और कुछ में बाहर के अनुकरण द्वारा।''' पर शैली की विशिष्टता के विन्यास के पूर्व भाषा की सामान्य योग्यता अपेक्षित होती है। आजकल हिन्दी लिखने वालों की संख्या सौभाग्य से उत्तरोत्तर बढ रही है। पर यह देखकर दुःख होता है कि इनमे से बहुत-से लोग प्रारम्भिक योग्यता और अभ्यास प्राप्त करने बहुत पहले ही विशिष्टता के प्रार्थी दिखाई पड़ते हैं।"

अंग्रेज़ों के आने के बाद गद्य लिखने का रिवाज बढ़ा। छापाखाने आए। पत्र-पत्रिकाएँ निकली। अनुवाद हुए। कुछ लेखकों की शैली मे पण्डिताऊपन था, तो कुछ-कुछ का वाक्य-विन्यास फारसी ढंग पर था और मुहावरेदानी उर्दू से भरी थी। यों भातेन्दु-युग-पूर्व के निबन्धों में तुकान्तों का प्रेम, अन्तिम क्रिया का लोप आदि मिलता है, जो शैली भारतेन्दु के समय मे निखार पर आ गई। निबन्धों के विषयो मे भी विस्तार हुआ। स्वप्नो के रूप मे व्यंगरूपक, स्तोत्र, उपालम्भ आदि के साथ-साथ व्यक्तिनिष्ठ निबन्धों की नींव भी इसी युग मे पड़ी।

परन्तु यह मस्ती और स्वच्छन्दता अधिक काल तक टिकी न रह सकी। द्विवेदीजी के समय में आकर निबन्ध का रंग-रूप दूसरा ही हो गया। द्विवेदीजी सम्पादक थे, व्यवस्थाप्रिय थे, भाषा मे मँजाव के प्रेमी। 'सरस्वती' का सम्पादन-भार उन्होंने १९०३ मे ग्रहण किया। उससे पहले निबन्ध का रास्ता दिखाने वाले दो अनुवाद प्रकाशित हुए थे—'बेकन विचार रत्नावली' और चिपलूणकर का 'निबन्धमालादर्श'।[1] द्विवेदीकालीन लेख 'बातो के संग्रह' अधिक होते थे, उनमे स्थायी निबन्ध के तत्त्व कम थे। उनमे जानकारी इकट्ठा करने और देने पर अधिक ज़ोर था, रोचकता पर कम।

इस पत्रकारिता के स्तर से उठकर धीरे धीरे हिन्दी निबन्ध व्याख्यात्मक बना। उसमे और घरेलूपन आने लगा। परिहास और व्यंग्य के पुट ने भी उसमे मिर्च-मसाला बढाया। निबन्ध-शैली धीरे-धीरे आकार ग्रहण करने लगी और करती जा रही है। वह आधुनिक से आधुनिकतम बनती जा रही है। वह सभी भारतीय भाषाओ के संस्कार ग्रहण करती जा रही है। उसके विषयो मे जैसे-जैसे नयापन आता जा रहा है, भाषा की अर्थवाहक

१. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा अनूदित

शक्ति भी बढ़ रही है।

गम्भीर निबन्धों मे समालोचनात्मक निबन्ध एक ओर विकसित होते गए हैं। डॉक्टर श्रीकृष्णलाल ने 'निबन्ध-संग्रह' की भूमिका मे पृष्ठ २० पर कहा है कि—"द्विवेदी-युग मे समालोचनात्मक निबन्ध पर्याप्त परिमाण में प्रस्तुत किये गए, परन्तु उनका स्तर बहुत ऊँचा न था। काव्य की बहिरंग परीक्षा और चमत्कार के उद्घाटन में ही लेखकों का ध्यान लगा रहा। इसी समय बंगला, मराठी और अंग्रेज़ी के कुछ समालोचनात्मक निबन्धो के अनुवाद प्रकाशित हुए, जिनमे कवीन्द्र रवीन्द्र का 'प्राचीन साहित्य' और द्विजेन्द्र-लाल राय का 'कालिदास और भवभूति' दो विशिष्ट समालोचनात्मक निबन्ध थे। द्विवेदी-युग समालोचनात्मक निबन्धों की तैयारी और प्रयोग का युग था, अस्तु, उस युग में इस प्रकार के निबन्धों का स्तर बहुत ऊँचा न उठ सका। छायावाद-युग समालोचनात्मक निबन्धो के विकास का युग माना जा सकता है।···इस समय रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा, तथा छायावाद-युग के उदीयमान कवि और लेखक—पन्त, प्रसाद, 'निराला' तथा नन्ददुलारे बाजपेयी, बनारसीदास चतुर्वेदी, गुलाबराय आदि समालोचना के क्षेत्र में अपनी नवीन चेतना लेकर प्रविष्ट हुए। · छायावाद-युग के अन्त और प्रगतिवाद के युग में अनेक नये आलोचक हिन्दी के क्षेत्र मे उतरे, जिनमें हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शांतिप्रिय द्विवेदी, 'अज्ञेय', नगेन्द्र आदि प्रमुख हैं।" विद्वान् लेखक ने बनारसीदास चतुर्वेदी को छायावाद का लेखक कैसे माना है और शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'अज्ञेय', नगेन्द्र आदि कैसे प्रगतिवादी युग के आलोचक हैं, वह वही जाने। परन्तु परम्परा का रेखाचित्र जो उन्होने प्रस्तुत किया है, वह संक्षेप में सही है। आलोचनात्मक निबन्धो के विकास-क्रम की रेखा का विस्तार से विवेचन मैंने अपनी दूसरी पुस्तक 'समीक्षा की समीक्षा' में किया है।

२

निबन्ध का हिन्दी में विकास

हिन्दी-गद्य के सर्वांगीण विकास में पत्र-पत्रिकाओं का भी बड़ा योग रहा है। 'हिन्दी पत्रों के सवा सौ वर्ष' नामक १६४६ मे प्रकाशित ४० पृष्ठों के अपने निबन्ध में श्री कन्हैयालाल सहल ने कहा है कि हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र 'बनारस अखबार' माना जाता है, जो सन् १८४५ मे प्रकाशित हुआ था और जिसके सम्पादक गोविन्द रघुनाथ थत्ते थे; परन्तु पहला पत्र था 'उदन्त मार्तण्ड', जिसका ३० मई १८२६ को सबसे पहला अंक निकला था। यह प्रति मंगलवार को प्रकाशित होता था। इसके सम्पादक थे कानपुर के पं० जुगलकिशोर शुक्ल। इस पत्र की खडी बोली को मध्यदेशीय भाषा कहा जाता था। यह हिन्दी का पहला पत्र केवल १½ वर्ष चला और ४-१२-१८२७ को इसका अन्तिम अंक निकला।

यों पूर्व भारतेन्दु काल, भारतेन्दु काल, उत्तर भारतेन्दु और द्विवेदी-काल तथा वर्तमान काल तक पत्रो का विकास स्वयमेव एक मनोरंजक विषय है। गद्य के अन्य प्रकार तथा निबन्ध, समालोचना, प्रत्यालोचना, साहित्यिक पत्र-व्यवहार, डायरी, रिपोर्ट आदि के लिए भी नियतकालिक ही सबसे बड़ा माध्यम रहे हैं। हिन्दी-गद्य-शैली के विकास का अध्ययन इनके बिना पूर्ण नहीं हो सकता। अनुवाद की भाषा भी दिन-ब-दिन कैसे समृद्ध होती गई यह इन्हीं से जाना जा सकता है। पहले पत्र की सवा सौ वर्ष पुरानी हिन्दी का नमूना पढ़िये—"यह उदन्त मार्तण्ड अब पहले-पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु, जो आज तक किसी ने नहीं चलाया, पर अंग्रेजी ओ पारसी ओ बंगले ये जो समाचार का कागज छपता है उसका सुख बोलियों के जानने और पढने वालो को ही होता है। इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ और समझ ले और पराई अपेक्षा न करे जो अपने भाषे की उपज न छोडे इसलिए..... ..."

किसी भी भाषा की शैली का विकास कैसे होता है इसके अनेक सामाजिक-ऐतिहासिक कारण है। भाषा की ग्राहिका-शक्ति जब तक सजीव है, तब तक वह सप्राण, गतिमान भाषा है। भारतेन्दु-युग की भाषा आज भी छलछलाती, चटपटी, सप्राण भाषा जान पडती है। उसका कारण तब हिन्दी अपनी जडो के अधिक निकट थी। पूर्वी हिन्दी, भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि बोलियो से वह अधिक सन्निकट थी। उसी की लोकोक्तियो और मुहावरो से वह समृद्ध भी बनी। बंगला के प्रभाव से वह संस्कृतमयी, शुद्ध और अलं-करणयुक्त एक प्रकार से हुई, तो उर्दू के संस्कार ने उसके खडी-बोलीपन को सँवारा और माँजा। अंग्रेजी के प्रभाव ने हिन्दी-अभिव्यञ्जना मे दुरूहता, गहनता और बोझिलता ला दी। यद्यपि शब्दो की छटाओं (शेड्स) को व्यक्त करने की ओर भी हमारे लेखको का विश्लेषण-प्रधान मस्तिष्क बढा। अन्य देशी-विदेशी भाषाओं के भी प्रभाव पडे है . यथा गुजराती की सादगी का गांधी और अन्य गांधीवादी लेखको-विचारको की शैली की मारफत। मराठी का प्रभाव समाचार-पत्रो की भाषा से अधिक नही पडा है और दक्षिण-भारत की अन्य भाषाओं का प्रभाव धीरे-धीरे हिन्दी पर पडेगा ऐसा जान पडता है।

अत्याधुनिक हिन्दी-गद्य के निर्माताओं के नाम गिनाना यहाँ अपेक्षित नही है। परन्तु बहुत थोडे अपवाद छोड दें तो सभी लेखको की रचनाओं मे एक प्रकार की भाषा की निविडता अथवा सघनता पाई जाती है। वह अशतः युग की समस्या-मूलक चिन्ता के कारण भी है और दूसरे अपने माध्यम पर पूर्ण अधिकार के अभाव के कारण भी है। इधर ललित गद्य के भावात्मक आत्म-निबन्धो के क्षेत्र मे, जिन निबन्धो को बलवन्त राय ठाकोर नामक गुजराती समीक्षक निबन्धिका कहते है, बहुत-सा कार्य हो रहा है। और हिन्दी मे साहित्यिक भाषा को बोल-चाल की भाषा के निकटतम लाने का बहुत-सा यत्न हो रहा है, जो बहुत शुभ है। आलोचना की भाषा एक बार पं० पद्मसिह शर्मा के समय जो निरी रस ग्रहण की भाषा थी उसे पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वैज्ञानिक, सन्तुलित रूप दिया था। बहुत-से समाचार-पत्रीय लेखन ने उस स्तर को नीचे गिरा दिया है और हमारे कुछ आलोचक शब्दो का अनावश्यक धुँधला और चलताऊ प्रयोग करने लग गए, यह दुःख की बात अवश्य है। फिर भी हिन्दी-गद्य का भविष्य बहुत उज्ज्वल है। चूँकि उसमे गति है, प्राण है और सतत-ऊर्ध्वगामिनी श्रमशीलता है।

भारतेन्दु-पूर्व-काल के एक महत्त्वपूर्ण लेखक थे राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द, जिनकी उर्दूई शैली ने हिन्दी मे एक नया चलन चलाया। इसी

शैली मे प्रेमचन्द ने आगे लिखा और इस प्रकार से लिखित भाषा बोली हुई भाषा के निकट लाई गई। यद्यपि फिर कुछ संस्कृत-बहुलता के प्रेमियों ने हिन्दी को दुरूह और दुर्बोध बनाने का यत्न किया, पर राजा शिवप्रसाद का उद्देश्य था कि 'लिपि देव नागरी हो और भाषा ऐसी मिली-जुली रोज़मर्रा की बोल-चाल की हो कि किसी दल वाले को एतराज़ न हो।' डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने दो उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि उनकी शैली में परिवर्तन होता गया। उनकी शैली उत्तरोत्तर उर्दूमय बनी जैसे इस वाक्य से लक्षित होता है—"इसमे अरबी, फारसी, संस्कृत और अब कहना चाहिए अंग्रेज़ी के भी शब्द कन्धे-से-कन्धा भिडाकर यानी दोश-बदोश चमक-दमक और रौनक पावे, न इस बेतरतीबी से कि जैसे अब गडबड मच रहा है, बल्कि एक सल्तनत के मानिन्द कि जिसकी हदे कायम हो गई हो और जिसका इन्तिज़ाम मुन्तज़िम की अक़्लमन्दी की गवाही देता है।"

राजा लक्ष्मणसिंह उनके विपरीत संस्कृत-गर्भित भाषा लिखते थे। 'शकुन्तला' के अनुवाद की भाषा से जाना जा सकता है कि उनकी रचना मे ब्रजभाषा की भी पुट रहती थी। उदाहरण के तौर पर उनका यह वाक्य देखिये—"पहले तो राज बढाने की कामना चित्त को खेदित करती है फिर जो देश जीतकर वश किये उनकी प्रजा के प्रतिपालन का नियम दिन-रात मन विकल रखता है जैसे बडा छत्र यद्यपि घाम से रक्षा करता है, परन्तु बोझ भी देता है।"

हरिश्चन्द्र के लेखन मे इन दोनो ही पद्धतियो का समुचित परिपाक-सा हुआ है। यद्यपि पलडा उनका संस्कृत की ओर ही झुका हुआ है। परन्तु उनका गद्य पढकर आज भी लगता है जैसे हम आधुनिकतम रचना पढ रहे हैं। कौन कहेगा कि निम्न लिखित अवतरण भारतेन्दु का होगा?

"ससार के जीवो की कैसी विलक्षण रुचि है। कोई नेम-धर्म मे चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान मे मस्त है। कोई मत-मतान्तर के झगडों में मतवाला हो रहा है। हरएक दूसरे को दोष देता है। अपने को अच्छा समझता है। कोई संसार को ही सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढता है। कोई परमार्थ को ही परम पुरुषार्थ मानकर घर-बार तृण-सा छोड देता है। अपने-अपने रंग में सब रँगे हैं; जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है, वही उसके जी मे गड रहा है और उसी के खण्डन-मण्डन मे वह जन्म बिताता है।"

भारतेन्दु-युग मे निबन्ध-रचना जैसे निखरी और जिस ऊँचाई पर पहुँची, उसके बाद वैसा बौर इस पेड को नहीं आया। अब तो उम्मीद

कीजिये कि "ऐहे बहुरि बसन्त ऋतु, उन बागन, उन फूल।"

अगर सन्-संवत् के हिसाब से चला जाय तो बीसवीं सदी के इन चौवन वर्षों मे निबन्ध के प्रमुख रचनाकारों का तिथि-क्रम द्विवेदीजी से शुरू होगा। संवत् १६५० (सन् १८६४) मे 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना हुई। साहित्य का कार्य बहुत-कुछ भाषा और लिपि-विषयक प्रचार, परिभाषा-निर्माण आदि ठोस कार्यों की ओर मुड गया। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास मे पृष्ठ ४८७ पर लिखा है कि "नूतन हिन्दी-साहित्य का वह प्रथम उत्थान कैसा हँसता-खेलता सामने आया था। भारतेन्दु के सहयोगी लेखकों का वह मण्डल जिस जोश और जिन्दादिली के साथ और कैसी चहल-पहल के बीच अपना कार्य कर गया, इसका उल्लेख हो चुका है। भारतेन्दु-जी के सहयोगी अपने ढर्रे पर कुछ-न-कुछ लिखते तो जा रहे थे, पर उनमे वह तत्परता और वह उत्साह नही रह गया था। यह नवीन साहित्य का द्वितीय उत्थान था जिसके आरम्भ मे 'सरस्वती' पत्रिका के दर्शन हुए।"

बाद मे शुक्लजी पृष्ठ ४६२ पर लिखते हैं कि इस द्वितीय उत्थान-काल मे एकदम पाँच-सात विशिष्ट लेखको के नाम नहीं बताए जा सकते। फिर इसका कारण यह था कि "बहुत-से लेखकों का यह हाल रहा कि कभी अखबार-नवीसी करते, कभी उपन्यास लिखते, कभी नाटक मे दखल देते, कभी कविता की आलोचना करने लगते और कभी इतिहास और पुरातत्त्व की बातें लेकर सामने आते। ऐसी अवस्था मे भाषा की पूर्ण शक्ति प्रदर्शित करने वाले गूढ-गम्भीर निबन्ध-लेखक कहाँ से तैयार होते?"

पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी का नाम सबसे पहले सामने आता है। उनकी विशेषता इसीमे थी कि निबन्ध-लेखन को उन्होंने पत्रकार-कला से जोड दिया। सामयिक विषयों पर और कभी-कभी टिप्पणी-जैसे दो-दो तीन-तीन पृष्ठों के उनके कुल २५० निबन्ध मिलते हैं। निबन्धों का आरम्भ तथ्य-कथन के रूप मे होता है। उनकी मधुकर की-सी संग्राहक वृत्ति है। अतः वे मौलिकता का कोई दम्भ नही करते। सब जगह जहाँ से कोई भी चीज ली हो उस स्रोत का उल्लेख अवश्य कर देते हैं। अपनी बात निर्भयता से कहते थे। और साहित्य के समूचे विचार-पक्ष का एक प्रकार से समीक्षापूर्ण नेतृत्व भी करते थे। उनका एक निबन्ध 'पुस्तको का समर्पण' नाम से है। उसमे से यह उदाहरण हमारी बात की पुष्टि करेगा। वे कहते है—"कुछ समय से हिन्दी-पुस्तकों के कोई-कोई लेखक, अनुवादक और प्रकाशक पुस्तक-समर्पण के सम्बन्ध में एक अनुचित और अन्यायपूर्ण काम कर रहे हैं। रद्दी-से-रद्दी पुस्तक

का समर्पण किसी के नाम पर कर देना वे बहुत ज़रूरी समझने लगे हैं। उनके काम का यह पहला अनौचित्य है। जिस पुस्तक का कुछ भी महत्त्व नहीं, जिससे कुछ भी लाभ की सम्भावना नहीं उसके समर्पण की क्या आवश्यकता? भेंट मे किसी को वही चीज़ दी जानी चाहिए जो अच्छी हो, बुरी चीज़ किसी को देना उसका अपमान करना है। फिर औरो की रची हुई दो-दो चार-चार सौ वर्ष की पुरानी पुस्तको का समर्पण करने का अधिकार प्रकाशक को कहाँ प्राप्त हुआ। दूसरे की चीज़ का समर्पण करने वाले वे कौन हैं? उनके समर्पण-कार्य का दूसरा अनौचित्य है कि जिनको वे पुस्तक-समर्पण कर रहे हैं, उनसे ऐसा करने की अनुमति लेने तक की वे शिष्टता नहीं दिखाते। पुस्तक छापी और समर्पण-पत्र लगाकर भेज दी। बहुत हुआ तो एक चिट्ठी लिख दी कि बिना पूछे ही मैंने समर्पण कर दिया है! क्षमा कीजिए!! तीसरा अनौचित्य यह है कि कोई शिष्ट शिरोमणि जिसे पुस्तक समर्पण करते हैं उसीको उसकी समालोचना करने की आज्ञा भी दे देते हैं!!! इस अशिष्टता और अनाचार का कुछ ठिकाना है!! अब तक इन पंक्तियों के तुच्छ लेखक के नाम पर इसी तरह की कई पुस्तको का समर्पण हो चुका है। प्रार्थना है कि अब इस पर और अन्याय न किया जाय। वह अपने को समर्पण का पात्र ही नहीं समझता।"

इस अवतरण से यह स्पष्ट है कि द्विवेदीजी के लेखन मे आधुनिक निबन्ध के लिए आवश्यक तत्त्व बिखरे पड़े थे, परन्तु उन्हें जैसे समन्वित नहीं किया गया था। यह संश्लेषण वस्तुतः द्विवेदी-युग के पत्रकारो के बूते की बात नहीं थी। भारतेन्दु-मण्डल के लेखकों की मस्ती कम हो चुकी थी और नये लेखनादर्श किसी तरह रूपायत्त नहीं हो पाये थे। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक ही था कि संक्रमणावस्था में निबन्ध अनेक दिशाएँ खोजता।

एक दिशा थी व्याख्यान की। व्यास-पीठ या मञ्च पर से दिये उपदेशों की। श्रोता के साथ सम्वाद की। इस दिशा से स्वामी रामतीर्थ, अध्यापक पूर्णसिंह आदि चले और इस नीत्युपदेशक विचार-धारा का प्रभाव अवश्य पड़ा रामचन्द्र शुक्ल-जैसे मनोवृत्तियो के विश्लेषणपरक लेख लिखने वालो पर। शुक्लजी के 'भय' या 'लोभ' या ऐसे मनोविकारो पर लिखने के पीछे एक प्रकार की नैतिक सोद्देश्यता, लेखक सर्वसाधारण पाठक से उठकर, भिन्न, ऊचा है यह मान्यता भी अध्याहृत थी। यह अध्यापक की-सी तटस्थता और उपदेश-परायणता निबन्ध के लिए मारक सिद्ध होती है। अपने 'हिन्दी-निबन्ध' शीर्षक निबन्ध में श्री विजयशंकर मल्ल का कथन है कि "द्विवेदी जी ने थोड़े-से ऐसे

निबन्ध भी लिखे हैं जिनमे उनकी शैली की रोचकता, स्वच्छन्द मनोदशा और थोडी आत्मीयता के दर्शन होते हैं। 'दण्डदेव का आत्मनिवेदन', 'नल का दुस्तर दूत-कार्य', 'कालिदास का भारत', 'गोपियो की भगवद्-भक्ति' आदि कुछ निबन्ध इसी प्रकार के है। इन निबन्धो मे अर्जित ज्ञान ही है पर उसे अपना बनाकर आत्मीय ढंग से प्रकट करने और अवसर एक रमणीय वातावरण उपस्थित करने में लेखक को पूरी सफलता मिली है।"[1] परन्तु इस कथन से उसी पुस्तक के विद्वान् भूमिका-लेखक डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय असहमत जान पडते है। वे कहते है कि भारतेन्दु-युग से निबन्ध का सूत्रपात हुआ, परन्तु बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि के "उपादान, विषय-विस्तार और शैली सीमित रही। द्विवेदी-युग निबन्ध-रचना के परिमार्जन और विकास का युग है। स्वयं द्विवेदीजी ने विभिन्न गद्य-शैलियो को जन्म दिया, लेकिन एकाध रचना को छोडकर उनकी शेष गद्य-रचनाएँ निबन्ध की कोटि मे नहीं आती।"[2] वार्ष्णेय जी की भाँति द्विवेदी जी के लेखन को निबन्ध कहा जाय या नही यह शंका तो मन मे नहीं उठती, परन्तु जो व्यक्ति इन मापदण्डो से चलेगा कि निबन्ध एक Reverie मात्र है, उसे "रामचन्द्र शुक्ल के मनोविकारो पर लिखे गए निबन्ध भी हिन्दी निबन्ध साहित्य की अमूल्य निधि"[3] कैसे लगते हैं यह कहना कठिन है! परन्तु विद्वज्जनो का कार्य ही दो परस्पर-विरोधी बाते एक साँस मे कह डालना होता है, उनके शिष्यगण फिर भाष्य करके उसमे संगति बैठाते है। क्योकि उसी पुस्तक मे रामचन्द्र शुक्ल के उपर्युक्त निबन्धों पर मल्लजी का पृष्ठ ४२ पर कथन है कि "उनके मनोविकार-सम्बन्धी और सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक आलोचना वाले निबन्धों मे यह प्रवृत्ति सामान्य रूप से पाई जाती है। उनके निबन्धो की असली विशेषता यही है कि जो व्यक्ति प्रधान नही, विषय-प्रधान निबन्ध की विशेषता है।"[4] विषय-प्रधान होने से द्विवेदीजी के निबन्ध घटिया हो जाते है, वे ही शुक्ल जी के हाथों मे आकर हिन्दी-निबन्ध-साहित्य की अमूल्य निधि हो जाते है। दोनो ही निबन्ध की 'रेवेरी' वाली परिभाषा मे कहीं नहीं आते।

इस सारे मत-मतान्तर की उलझन का मूल कारण यह है कि हिन्दी-निबन्धकार के मानस और दृष्टिकोण में अन्तर होता गया है, उसकी ओर हमारे

१. 'हिन्दी-गद्य की प्रवृत्तियाँ', पृष्ठ ५०।

२. वही, पृष्ठ ११।

३. वही।

४. वही।

आलोचकों ने ध्यान नहीं दिया है। १६०० से १६२० या १६२० से १६४० के बीच मे निबन्धकार समय की गति से या काल-पुरुष (Time Spirit) से अछूते नहीं रहे हैं। द्विवेदीजी के समय की समस्याएँ हजारीप्रसाद जी के समय की नही है। उन समस्याओ के साथ-साथ विचारों का दृष्टिकोण भी विशद, व्यापक, सर्वांगीण और अधिक उदार—सहिष्णु बनता गया है। परन्तु इस सारे समाज-मनोविश्लेषण की गहराई मे जाने से हमारे बहुतोषिणी आलोचना लिखने वाले बचते रहते हैं।

द्विवेदीजी के बाद जो बडा मोड हिन्दी-निबन्धो मे आया और जिससे निबन्ध सरलतर, व्यक्तिपरक, संस्मरण-रेखा-चित्रात्मक होते गए, वह गांधीवाद का प्रभाव था। काका कालेलकर, बनारसीदास चतुर्वेदी सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्रकुमार, महादेवी वर्मा आदि के निबन्ध इसी प्रकार के है। उनमें संथाली मुरली है, नदियों का दर्शन और प्रवास-वर्णन है, आकाश-दर्शन है, जेलकी बाते है, आलू की खेती का आत्म-व्यंग्य है, कस्मै देवाय की चिन्ता हैं। योजनाओं के अम्बार हैं, रस्किन-इमर्सन-थोरो के उद्धरण हैं, जीवन के मौलिक नैतिक प्रश्नो का ऊहापोह है। मनुष्य-शक्ति या अश्व-शक्ति का विचार है, बाल-मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण है (राम-कथा), अबुद्धिवाद का समर्थन है, जीवन मे बाह्यत विपरीत जान पडने वाली बातो का प्रतिपादन है (बाज़ार-दर्शन) और देश-विदेश की सीमाएँ लाँघकर किसी फेरी वाले चीनी व्यक्ति के प्रति मात्र मानवी सहानुभूति है। यहाँ निबन्ध के लिए विषयपरकता प्रधान नहीं रही है। ए०जी० गार्डनर जैसे कहते थे कि कोई भी खूँटी चल सकती है, मुख्य बात उस पर टोप लटकाने की है। लेखक अपनी ही बात कहता है चाहे वह बाहुबली की यात्रा का वर्णन करता हो, चाहे नेहरूजी की कहानी की चर्चा करता हो, चाहे वह कवि-वेश पर व्यंग्य करता हो, सर्वत्र वह आपुनपौ लिये हुए है। वह उससे छूटा नहीं है। यह व्यक्तिपरकता हमारे समाज-जीवन मे बहुत तीव्रता से बढती चली गई। इसका एक ओर स्वच्छन्द उच्छृंखल मत प्रदर्शन वाला रूप पद्मसिंह शर्मा की अतिभावुकतापूर्ण बिहारी-टीका मे या 'उग्र', नरोत्तम नागर, चतुरसेन शास्त्री के गद्य-काव्य 'अन्तस्तल' या ऐसे ही भाव-प्रधान गद्य मे मिलता है—(माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, डॉ० रघुवीरसिंह और वियोगी हरि के गद्य-काव्यों में शैली का साहित्यिक रूप निखार पर है) दूसरी ओर वह व्यक्तिनिष्ठता समष्टि का अग बनकर विचार-प्रधान हो गई है जैसे हजारीप्रसाद द्विवेदी, वासुदेवशरण अग्रवाल, भगवतशरण उपाध्याय आदि के निबन्धो मे। यही निबन्ध संस्मरण, रिपोर्ताज, डायरी या पत्र-

लेखन के बहुत निकट आ गया है। परन्तु दोनों ही प्रकारों में जो अति गम्भीरता है वह निबन्ध की हल्की-फुल्की प्रकृति के लिए मारक है। वस्तुतः निबन्ध में व्यंग्य-विनोद का पुट अत्यन्त आवश्यक है। सियारामशरण गुप्त, जैनेन्द्र-कुमार और हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्धों में वह नर्म-परिहास बहुत शिष्ट और सूक्ष्म रूप से अपनी छटा दिखलाता है। जैसे बातचीत में थोड़ा-बहुत हँसी-मज़ाक चला ही करता है। भारतीयों की चिरतरुण सांस्कृतिकता ने सदा जीवन-पूजा की है और जीवन की गम्भीर-करुण घटनाओं को भी तटस्थ दार्शिनिकता से परिहासमयी वृत्ति से देखा गया है। एक निबन्धकार के लिए यह वृत्ति आवश्यक है। अन्यथा वह एकदम उपदेष्टा या 'बोर' बन जायगा। उदाहरण के तौर पर आधुनिक निबन्धकार की वृत्ति की छटा हम 'प्रसाद' जी के इन उद्गारों में पाते है जो उन्होंने प्रेमचन्द की मृत्यु के समय प्रकट किये थे। नन्ददुलारेजी ने उन्हें यों ग्रथित किया है :

"गत वर्ष जब प्रेमचन्दजी हिन्दी-संसार को सूना करके जा रहे थे, तब उनके साथ श्मशान तक प्रसाद जी भी गये थे और मैं भी गया था। अर्थी काशी की गलियो से होकर जा रही थी, इतने मे किसी ने वही की बोली में कहा—"मालूम होता है कोई मास्टर मर गया है।" बात यह थी कि अर्थी के साथ थोडे-से पढ़े-लिखे लोग थे, कोई भीड न थी और 'राम नाम सत्य है' की आवाज भी वैसी नही हो रही थी। ऐसी अवस्था मे कोई मामूली मास्टर ही मर सकता था, और कौन मरता !"

स्पष्ट ही मुझे वह बात अच्छी नही लगी और मैं कुछ गम्भीर-सा बन चला। अर्थी चली जा रही थी और हम लोग उसके पीछे जा रहे थे। इतने में देखता क्या हूँ कि प्रसादजी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया है और कान से लगकर धीरे-से किन्तु अपनी सुपरिचित मुस्कान के साथ कह रहे हैं। "वाजपेईजी, ई का कहि रहा है, कुछ समझ मे आवता है ?"

"यहै बनारसी रंग आय।"

—नन्ददुलारे वाजपेयी (जयशंकर 'प्रसाद')

हिन्दी के निबन्धकार में तटस्थता और तद्रूपता के बीच में जितना अधिक सामंजस्य और सन्तुलन बढता जायगा, उसके निबन्ध भी उत्तरोत्तर साहित्यिक दृष्टि से अधिक अर्थपूर्ण होते जायँगे। हिन्दी मे निबन्ध के विकास का भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

३

हिन्दी के निबन्धकार और शैलीकार

भारतेन्दु-शतसांवत्सरिकी के समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के लिए रातों-रात मैंने और मेरे मित्र विद्यानिवास मिश्र ने मिलकर इलाहाबाद में एक पुस्तिका 'भारतेन्दु-मुकुर' लिखी, जो प्रचार के लिए मुफ्त बाँटी गई। उसमें भारतेन्दु-मण्डल के दिये गए परिचय स्वयं पूर्ण होने से, उसके अंश यहाँ दे रहा हूँ—

१. प्रतापनारायण मिश्र

उन्नाव से थोड़ी दूर बैजे गाँव के रहने वाले संकटाप्रसाद मिश्र के पुत्र प्रतापनारायण का जन्म आश्विन कृष्ण नवमी, संवत् १९१३ में हुआ। पिता चाहते थे कि पुत्र ज्योतिषाचार्य बने, परन्तु पुत्र की रुचि उस ओर नहीं थी। प्रतापनारायण दूसरों का भविष्य देखने की अपेक्षा हिन्दी-गद्य का भविष्य स्वयं निर्माण करने वाले थे।

शिक्षा का यह हाल था कि कई स्कूलों में अंग्रेज़ी और हिन्दी पढ़ी, परन्तु स्वतन्त्र प्रकृति के कारण कहीं जमकर पढ़ न सके। सं० १९३२ के लगभग स्कूल से अपना पिण्ड छुड़ाया। कुछ दिनों के बाद पिता की मृत्यु के साथ-साथ प्रतापनारायण की शिक्षा का भी अन्त हो गया। 'कवि-वचन-सुधा' से उनके हृदय में साहित्य के प्रति प्रेम उमगा। कानपुर में ललताप्रसाद शुक्ल 'ललित' का तब बड़ा नाम था। उन्हींसे काव्य-शास्त्र के नियम पढ़े। 'लावनियों' के अखाड़ों के कारण उनकी साहित्यिक रुचि को बहुत प्रोत्साहन मिला। १५ मार्च १८८३ ईस्वी को उन्होंने 'ब्राह्मण' नामक एक बारह पृष्ठ का मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया। सन् १८८७ में वह कुछ दिनों के लिए बन्द हो गया। 'ब्राह्मण' के लेख प्रायः हास्यरसमय और शिक्षाप्रद होते थे। सन् १८८९में वे कालाकांकर गये और 'हिन्दी-हिन्दोस्तान' के सहकारी-

सम्पादक हुए। परन्तु अपने स्वतन्त्र स्वभाव के कारण वहाँ टिक नहीं सके। स्वार्थी-पुराणपन्थी और देश-हित-विरोधियों पर अपनी कविताओं में उन्होंने बहुत व्यंग किया है। उन्होंने २० पुस्तकें लिखीं और १२ का अनुवाद किया। इनका देहान्त आषाढ़ शुक्ल ४, संवत् १९३१ को हुआ।

उनके निबन्धों के शीर्षकों से ही पता चलता है कि वे साधारण-से-साधारण विषय में भी कैसी जान डाल देते थे—'घूरेकलत्ता बिनैं, कनातनक डोल बाँधै हो', 'समझदारी की मौत है' आदि। उनके व्यंग मे पण्डित बालकृष्ण भट्ट की तरह चिड़चिड़ापन नही था, विनोदपूर्ण वक्रता की प्रधानता थी। गम्भीर-से-गम्भीर विषयों पर लिखते समय भी परिहास की पुट वे नहीं भूलते थे; और इसीलिए उनके निबन्धों का व्यंग मधुर और निगूढ़ है। विषयो का चुनाव साधारण दैनन्दिन जीवन की वस्तुओं से करते, जैसे 'बात', 'वृद्ध', 'भौं', 'दाँत' इत्यादि।

अपनी भाषा-शैली में हिन्दी के मुहावरों का वे विशेष खयाल रखते थे। कही-कहीं तो इन मुहावरों की अति भी कर देते थे। जैसे-"डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात-की-बात में चाहे जहाँ की जो बात हो जान सकते हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है, बात जमती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है, हमारे-तुम्हारे भी सभी काम बात ही पर निर्भर हैं। 'बातही हाथी पाइए बातहि हाथी पाँव'।"

डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने उनकी भाषा के जो-कुछ दोष गिनाये हैं उनमे प्रमुख है भाषा-शैली का अव्यवस्थित होना, पण्डिताऊपन और पूरबीपन का झलकना, व्याकरण-सम्बन्धी भूलें और असुविधाजनक प्रयोग आदि। फिर भी उनकी रचना की रोचकता अमान्य नही की जा सकती। उनमे एक विलक्षण आत्मीयता थी और जन-साधारण तक पहुँचने की एक अननुकरणीय शक्ति। पं०रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार वे लेखन-कला मे भारतेन्दु को ही आदर्श मानते थे, पर उनकी शैली में भारतेन्दु की शैली से बहुत-कुछ विभिन्नता भी लक्षित होती है और वह विभिन्नता है विनोद की ओर उनका विशेष झुकाव। उनकी शैली का उदाहरण दिया जाता है—

"घी बड़ा पुष्टिकारक होता है, पर दो सेर पी लीजिए तो उठने-बैठने की शक्ति न रहेगी, और संखिया-सीगिया आदि प्रत्यक्ष विष है, किन्तु उचित रीति से शोधकर सेवन कीजिए तो बहुत-से रोग-दोष दूर हो जायँगे। यही लेखा धोखे का भी है। दो-एक बार धोखा खाके धोखेबाजो की हिकमतें

सीख लो, और कुछ अपनी ओर से झपकी-फुँदनी जोड़कर 'उसी की जूती उसी का सिर' कर दिखाओ तो बड़े भारी अनुभवशाली वरंच 'गुरु गुड़ ही रहा चेला शक्कर हो गया' का जीवित उदाहरण कहलाओगे। यदि इतना न हो सके तो उसे पास न फटकने दो तो भी भविष्य के लिए हानि और कष्ट से बच जाओगे।"

२. बालकृष्ण भट्ट

पं० बालकृष्ण भट्ट का जन्म प्रयाग में संवत् १९०१ में और मृत्यु संवत् १९७१ मे हुई। वे प्रयाग की कायस्थ पाठशाला में संस्कृत के अध्यापक थे। उन्होंने संवत् १९३३ मे अपना 'हिन्दी-प्रदीप' पत्र प्रकाशित किया, जिसमें तीस-बत्तीस वर्ष तक वे सब तरह के निबन्ध लिखते रहे। उनके २५ निबन्धो का एक संग्रह 'साहित्य-सुमन' नाम से प्रकाशित हुआ है। परन्तु कई लेख 'प्रदीप' मे बिखरे पडे हैं, जिनका संग्रहाकार प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। संवत् १९४३ मे भट्टजी ने लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता-स्वयंवर' की सच्ची समालोचना भी की और पत्रों मे उस पुस्तक की प्रशसा-ही-प्रशंसा देखकर की थी।

रामचन्द्र शुक्ल ने अपने इतिहास में भट्टजी के मुहावरा-प्रेम का एक उदाहरण दिया है—"एक बार वे मेरे घर पधारे थे। मेरा छोटा भाई आँखों पर हाथ रखे उन्हे दिखाई पड़ा। उन्होंने पूछा, 'भैया! आँख में क्या हुआ है?' उत्तर मिला, 'आँख आई है।' वे चट बोल उठे, 'भैया! यह आँख बडी बला है। इसका आना, जाना, उठना, बैठना सब बुरा है'।" पं० प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट की शैलियों की तुलना करने से कुछ ऐसी रूप-रेखा बनेगी—

प्रतापनारायण मिश्र	*बालकृष्ण भट्ट*
१. भाषा का रूप अस्थिर, परन्तु शैली सर्वसाधारण के समझने योग्य बनाने की विशेष चेष्टा के कारण सामान्यता की ओर झुकी हुई है। साहित्यिक छटा कम।	१. उनके पूर्व की तीन भाषा-शैलियों—राजा शिवप्रसाद की उर्दू-प्रधान, लक्ष्मणसिह की संस्कृत-प्रधान और भारतेन्दु की मध्यम पद्धति में से किसी एक पद्धति का सचेष्ट अनुकरण नही किया। भारतेन्दु की भाँति साहित्यिक छटा अधिक, नागर-शैली।

प्रतापनारायण मिश्र	बालकृष्ण भट्ट
२ मुहावरों और कहावतों का चमत्कार केवल चमत्कार के लिए कम । अधिकतर वह बात-की-बात मे आ जाते थे ।	२. मुहावरो और कहावतों का चमत्कार विशेष रूप से दिखाते थे ।
३. पद्यात्मकता अथवा कल्पना के अनिर्बन्ध कल्पना-विलास की ओर कम झुकाव । उनकी प्रतिभा सामाजिकता लिये हुए अधिक थी। उनकी मनोभूमि ही समाज-शास्त्रीय अधिक थी, कलात्मक कम ।	३. गद्य-काव्य का प्रवर्त्तन किया । यथा—'चन्द्रोदय' ।
४. हास्य की छटा संयमित रूप में मिलती है । उसमें तिक्तता नहीं है ।	४. विनोद की अपेक्षा तीखे, चुटीले व्यंग की ओर अधिक झुकाव । कुछ चिडचिड़ाहट भी थी ।
५. अंग्रेजी या उर्दू के शब्द कम हैं ।	५. अंग्रेज़ी के शब्द ब्रैकेट मे दे देते थे । कहीं-कहीं फ़ारसी-अरबी के बडे फ़िकरे भी अपनी मौज में आकर रखा करते थे ।
६. वाक्य-रचना सदोष है। कहीं-कहीं पूरबीपन के साथ-साथ बैसवारी का भी स्पर्श है ।	६. वाक्य-रचना चुस्त और भाषा पूरबीपन लिये हुए।
७. विराम-चिह्नों के प्रयोग मे असावधान ।	७. विराम-चिह्नो का उपयोग विशेष करते थे ।

उनकी भाषा-शैली का एक उदाहरण देखिए—

"स्कूल मे मास्टर साहब साक्षात् यमराज के अवतार, घर मे बाप-माँ की घुडकी और झिडकी का खटका। बरसवें दिन परीक्षा और दरजा चढाये जाने का खटका । कुछ याद नही है, बिना इम्तहान दिये बनता नही । फेल हुए तो अपने साथियो मे ऑख नीची होती है, साल-भर तक किताब के साथ लिपटे रहे, हिस्टरी याद है, तो मैथमेटिक्स का खटका है । इशारेबाजी और अपने पास वाले से पूछ-ताछ लिखते तो वहाँ इम्तहान के कमरे मे गार्ड लोगो की सख्त-मिजाजी का खटका है । खैर किसी तरह इम्तहान दे-दिवाय फारिग हुए तो अब दो-एक नम्बर कम रहने का खटका है ।"

३. बदरीनारायण चौधरी

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि—

"हरिश्चन्द्र तथा उनके समसामयिक लेखकों में जो एक सामान्य गुण लक्षित होता है, वह है सजीवता या जिंदादिली। शिक्षित समाज में संचरित भावों को भारतेन्दु के सहयोगियो ने बडे अनुरंजनकारी रूप मे ग्रहण किया।

उन पुराने लेखको के हृदय का मार्मिक सम्बन्ध भारतीय जीवन के विविध रूपों के साथ पूरा-पूरा बनाया। प्राचीन और नवीन के सन्धि-स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्रवर्द्धित रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर से लपेटी वस्तु।"

पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' भारतेन्दु-मण्डल के सबसे ज्येष्ठ साहित्यिक थे। इनका जन्म संवत् १६१२ मे भाद्रपद कृष्ण षष्ठी को हुआ। वे भारद्वाज गोत्रीय सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनका वंश खोटिया उपाध्याय कहलाता है। उनके दादा पण्डित शीतलाप्रसाद मिर्जापुर के प्रतिष्ठित रईस थे। उनके पुत्र गुरुचरणलाल थे, जिनके ज्येष्ठ पुत्र बदरीनारायण थे।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा माता ने दी। अंग्रेजी और फारसी घर मे ही पढी। गोंडा में शिक्षा के लिए गये, परन्तु वहाँ सर प्रतापनारायणसिंह और त्रिलोकीनाथसिंह के संग घुडसवारी, शिकार और निशाना लगाना सीखा। १६२४ में फैजाबाद के खाँ स्कूल में पुनः पढने बैठे। संवत् १६१९ मे मिर्जापुर लौटे। पिता ने स्कूल में मन न लगने के कारण घर पर ही संस्कृत पढाना आरम्भ किया। धीरे-धीरे संगीत की ओर भी ध्यान गया और कुछ समय में संगीत में निपुणता प्राप्त कर ली। अनेक भाषाएँ सीखीं, जिनका उदाहरण 'भारत-सौभाग्य' में मिलता है।

संवत् १६२८ में कलकत्ता से लौटने पर बीमार हो गए और बरसों पडे रहे। इस समय ब्रजभाषा के तथा अन्य ग्रन्थों को पढ़ने और समझने का अवसर मिला। पत्र-पत्रिकाओं की ओर भी रुझान हुआ। संवत् ३० और ३१ में 'सद्धर्म सभा' और 'रसिक समाज' स्थापित किये। संवत् १६३२ से कविता और लेख लिखना शुरू किया। 'कवि-वचन-सुधा' मे इनकी रचनाएँ छपने लगी, और यों भारतेन्दु जी के विशेष सम्पर्क मे वे आए। संवत् १६३८ में 'आनन्द-कादम्बिनी' की प्रथम माला प्रकाशित हुई और संवत् १६४१ से साप्ताहिक 'नागरी-नीरद' समाचार-पत्र। पहले पत्र में आपके ही लेख छपते थे, दूसरों के नहीं के बराबर; डॉ० जानसन के पत्र 'आइड्लर' की भाँति या चिपलूणकर की 'निबन्धमाला' की भाँति। इस पर भारतेन्दु ने उनसे कहा भी

कि यह पुस्तक नहीं है जो आपके ही लेख इसमे रहें। कविता 'प्रेमघन' उपनाम से लिखते थे। उनकी साहित्य-सेवा के लिए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के तृतीय वर्ष के सन् १९१२ के कलकत्ता-अधिवेशन का उन्हे सभापति बनाया गया। उस अवसर पर उन्होंने बड़ी गवेषणापूर्ण वक्तृता दी।

'प्रेमघन' जी की लेखन-शैली सहज और स्वाभाविक थी। कभी संस्कृत-बहुल और कभी उर्दू-मिश्रित ढंग से वे लिखते। जो-कुछ लिखते, उसे कई बार दुहराकर परिमार्जित करते थे। साधारण रीति से कोई बात कहना पसन्द नहीं करते थे। अनुप्रासयुक्त, आलंकारिक एवं गुम्फित शैली मे लम्बे-लम्बे वाक्य लिखने का आपको शौक था। आचार्य शुक्ल उनकी शैली के विषय मे लिखते हैं कि "प्रेमघन की शैली सबसे विलक्षण थी। वे गद्य-रचना को एक कला के रूप मे ग्रहण करने वाले—कलम की कारीगरी समझने वाले लेखक थे और कभी-कभी ऐसे पेचीले मजमून बाँधते थे कि पाठक एक-एक डेढ-डेढ़ कालम के लम्बे वाक्य मे उलझा रह जाता था।"

उनकी सूक्ष्म रसमयी निरीक्षण-शक्ति के परिचायक है उनके दो निबन्ध 'बुढवा मंगल' और 'कजली'! 'बुढ़वा मंगल' काशी का एक कलात्मक उत्सव था, जो अब नहीं-सा होता है। इन निबन्धों मे प्रेमघन ने अपने विषय का सजीव चित्र उपस्थित किया है। कजली की उत्पत्ति, विकास-प्रकार, स्थान-भेद, राग आदि का सांगोपांग अध्ययन करके उन्होंने लिखा है। उनके लेखों में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ ही देशज और ठेठ शब्दो का प्रयोग भी अपने समकालीन लेखकों मे सम्भवत. सर्वाधिक किया है। पोशाक-सम्बन्धी ही ऐसे न जाने कितने शब्द मिलेगे जिनका आजकल अर्थ जानने मे कठिनाई होगी, किन्तु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से वे महत्त्वपूर्ण है।

उनके व्यक्तित्व के विषय मे आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि " 'प्रेमघन' जी की हर एक बात से रईसी टपकती थी। बातचीत का ढंग बहुत ही निराला और अनूठा था। कभी-कभी बहुत ही सुन्दर वक्रतापूर्ण वाक्य उनके मुँह से निकलते थे। लेखन-कला के उनके सिद्धान्त के कारण उनके लेखो मे यह विशेषता नहीं पाई जाती। वे भारतेन्दु के घनिष्ठ मित्रो मे से थे और 'वेश भी उन्हीं का-सा रखते थे!" कहा जाता है कि 'प्रेमघन' जी ने भारतेन्दु जी के साथ कुछ नाटकों मे अभिनय भी किया था।

उनकी शैली का एक उत्तम उदाहरण 'कादंबिनी' पत्रिका के सं० १९४२ की संख्या से यह 'स्थानिक संवाद' नामक समाचार देखिए—

"दिव्यदेवी श्री महाराणी बडहर लाख झंझट झेल और चिरकाल-

पर्यन्त बड़े-बड़े उद्योग और मेल से दुःख के दिन सकेल, अचल 'कोर्ट' पहाड ढकेल फिर गद्दी पर बैठ गई। ईश्वर का भी क्या खेल है कि कभी तो मनुष्य पर दुःख की रेल-पेल और कभी उसी पर सुख की कुलेल है।"

समालोचना भी करते तो बडी कठोर होती थी। लाला श्री निवास-दास के 'संयोगिता-स्वयंवर' की जो २१ पृष्ठो मे समालोचना लिखी, उसमें किसी को नहीं छोड़ा।

४. माधवप्रसाद मिश्र

आपका जन्म पंजाब के हिसार जिले में भिवानी के पास कूँगड़ ग्राम में भाद्र शुक्ल १३ संवत् १९२८ को हुआ। आपकी मृत्यु, प्लेग के कारण चैत्र कृष्ण ४, सवत् १९६४ को हुई। ये बड़े शक्तिशाली लेखनी के धनी, कट्टर पुराण-पन्थ-समर्थक और देश-भक्त व्यक्ति थे। शुक्लजी ने लिखा है कि "गौड होने के कारण मारवाड़ियों से इनका विशेष लगाव था और ये उनके समाज का सुधार हृदय से चाहते थे।" 'वैश्योपकारक' और बाद मे 'सुदर्शन' नामक दो पत्रों का सम्पादन भी आपने किया। इनके लिखने में आवेश विशेष रूप से रहता था। 'समालोचक'-सम्पादक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जी इनकी रचनाएँ छापने के लालच से 'सदा एक-न-एक टण्टा उनसे छेड़े ही रखा करते थे।' इन्होंने द्विवेदीजी की भी एक लेख में खासी खबर ली। मालवीयजी ने जब छात्रों को राजनीतिक आन्दोलन से दूर रहने की सलाह दी तब इन्होंने एक अत्यन्त क्षोभपूर्ण खुली चिट्ठी उनके नाम छापी। आपने हिन्दी में पुस्तकाकार जीवनियाँ लिखने का प्रारम्भ किया। अधिकतर इनके लेख दैनन्दिन विषयों को लेकर ही हैं। विशेषतः विवादात्मक, खण्डन-मण्डनात्मक लेख उनके अधिक हैं। उनकी शैली का एक उदाहरण देखिए—

"किसी का धन खो जाय, मान-मर्यादा भंग हो जाय, प्रभुता और क्षमता चली जाय तो कहेगे कि 'सब मिट्टी हो गया।' इससे जाना गया कि नष्ट होना ही मिट्टी होना है। किन्तु मिट्टी को इतना बदनाम क्यो किया जाता है! अकेली मिट्टी ही इस दुर्नाम को क्यो धारण करती है? क्या सचमुच मिट्टी इतनी निकृष्ट है? और क्या केवल मिट्टी ही निकृष्ट है, हम निकृष्ट नही हैं। भगवति वसुन्धरे! तुम्हारा 'सर्वसहा' नाम यथार्थ है!"

५. बालमुकुन्द गुप्त

बाबू बालमुकुन्द गुप्त पंजाब के रोहतक जिले के रहने वाले थे। जन्म

सं० १९२२ में और मृत्यु सं० १९६४ में हुई। पहले ये उर्दू अखबार चलाया करते थे। बाद में कलकत्ता के 'बंगवासी' के सम्पादक हो गए। उसे छोड़कर 'भारत मित्र' में गए। इन्होंने 'आत्माराम' छद्म नाम से महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'भाषा और व्याकरण' लेख का प्रतिवाद प्रकाशित किया और 'कल्लू अल्ह-हत' नाम से एक विनोदपूर्ण आल्हा भी लिखा। 'गुप्त-निबन्धावली' का परि-वर्द्धित संस्करण झाबरमल्ल शर्मा और बनारसीदास चतुर्वेदी ने सम्पादित करके छापा है। 'शिवशम्भु का चिट्ठा' नाम से लिखे उनके सामयिक निबन्ध बहुत प्रसिद्ध हैं। शिवशम्भु की शैली का आनन्द उनके इस अवतरण से पाया जा सकता है—

"शर्माजी महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिलबट्टे से भंग रगडी जा रही थी। मिर्च-मसाला साफ हो रहा था। बदाम-इलायची के छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारगियाँ छील-छीलकर रस निकाला जाता था। इतने मे देखा कि बादल उमड रहे है। चीले नीचे उतर रही है। तबीयत मुरमुरा उठी। इधर घटा बहार मे बहार। इतने मे वायु का वेग बढा, चीलें अदृश्य हुईं, अँधेरा छाया, बूँदे गिरने लगीं। साथ ही तडतड-घडधड होने लगा, देखो ओले गिर रहे है। ओले थे, कुछ वर्षा हुई। बूटी तैयार हुई, बमभोला कह शर्माजी ने एक लोटा-भर चढाई। ठीक उसी समय लाल डिग्गी पर बड़े लाट मिण्टो ने बग देश के भूतपूर्व छोटे लाट उडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते मे यह दो आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु के बरामदे के छत पर बूँदें गिरती थी और लार्ड मिण्टो के सिर या छाते पर।"

बालमुकुन्द गुप्त की भाषा-शैली के बारे में शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के समर्थक रामचन्द्र शुक्ल तक ने कहा है कि—"गुप्तजी की भाषा बहुत चलती, सजीव और विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विषय हो, गुप्तजी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढ़ा देती थी। वे पहले उर्दू के एक अच्छे लेखक थे, इससे उनकी हिन्दी बहुत चलती और फडकती हुई होती थी।" परन्तु रामचन्द्र शुक्ल के ही शिष्य डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने उनके बारे मे कहा है कि "लेखो में वे पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की भाँति भाषा का खिचड़ी-रूप ही प्रयोग में लाते थे।" यानी गुप्तजी के लेखन-काल के समय तक हिन्दी-निबन्ध की भाषा-शैली के स्थिरीकरण की समस्या बराबर बनी हुई थी। उर्दू से हिन्दी को मँजाव मिलता था। मगर खिचडी भाषा का डर भी था। अंग्रेज़ी के विरुद्ध कुछ पण्डित-जन थे, तो कुछ उसकी खूबियों को अपनाना भी चाहते थे। यह भाषा-विषयक द्वन्द्व बहुत दिनों तक बराबर

चलता था। द्विवेदी जी के भाषा को 'स्टैण्डर्ड' बनाने के सब प्रयत्न और उद्योग केवल पत्रकारिता तक सीमित रहे। सृजनशील लेखक 'एकै लीकै ना चलै' का अपना 'नियतिकृत नियमरहित' मार्ग बराबर अपनाते ही रहे। उसे कौन रोकने वाला था! शिव की 'भंग की तरंग' उतनी उच्छृङ्खल नहीं थी जैसी ऊपर से जान पड़ती है। उस विक्षिप्तता मे भी एक नियमितता थी।

६. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी जयपुर के एक विख्यात पण्डित-घराने में २५ आषाढ संवत् १६४० मे जन्मे और बहुत छोटी आयु मे उनका देहान्त हुआ। यानी केवल सैंतीस वर्ष वे जीवित रहे। वे अजमेर के मेयो कालेज में अध्यापक रहे। बाद मे काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के ओरिएण्टल कॉलेज के प्रिंसिपल बने। आपने 'समालोचक' नामक एक पत्र निकाला। उसके लेखों से से झलकता है कि जैसे वे संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे, अंग्रेजी के भी अच्छे ज्ञाता थे और विनोदप्रियता उनके स्वभाव मे खूब थी। उन्होने थोड़ी-सी ही कहानियाँ लिखी है, परन्तु वे अमर हो गई है। इनका बहु-विषय-ज्ञान और इनकी विदग्धता की छाप इनके लेखन पर भी स्पष्ट है।

इनकी शैली का एक उदाहरण देखिए—

"प्रथम तो काशी से सामाजिक परिषद् को उड़ाने का जो यत्न किया जा रहा है वह अनर्गल, इति-कर्तव्यता-शून्य, उपेक्ष्य और एकदेशी है इसका प्रधान उद्देश्य मालवीय जी को अपदस्थ करना है और गौण उद्देश्य कुछ आत्मंभरि लोगो की तिलक बनने की लालसा है। युक्तप्रान्त मे बहुत-से लोगों को तिलक बनने की लालसा जग पड़ी है। पर चाहे वे त्रिवेणी मे गोता खावें, चाहे त्रिलोकी घूम आवे, चाहे उन पर न्यायालयो मे घृणित-से-घृणित अभियोग लग जावे, वे तिलक की षोडशी कला को भी नही पा सकते।"

और एक उदाहरण से उनका अध्ययन और व्यापक दृष्टि भी परिलक्षित होती है—

"पहले हमे काम असुरो से पड़ा, असीरिया वालो से। उनके यहाँ 'असुर' शब्द बड़ी शान का था। 'असुर' माने प्राण वाला, जबरदस्त। हमारे इन्द्र की भी वही उपाधि हुई, पीछे चाहे शब्द का अर्थ बुरा हो गया। ×× पारस के पारसियो से काम पड़ा तो वे अपने सूबेदारो की उपाधि 'क्षत्रप', 'क्षेत्रपावन' या 'महाक्षत्रप' हमारे यहाँ रख गए और गुस्तास्य,

विस्तास्य के वजन के कृशाश्व श्यावाश्व बृहदश्व आदि ऋषियो और राजाओ के नाम दे दिए। साथ ही मेषष, वृष, मिथुन भी यहाँ पहुँच गए। पुराने ग्रन्थकार तो शुद्ध यूनानी नाम आर, तार, जितुम आदि ही काम मे लाते थे। हूण वक्षु (अक्सस) नदी के किनारे पर से यहाँ चढ आए तो कवियो को नारगी की उपमा मिली कि ताजे मुडे हुए हूण की ठुड्डी की-सी नारंगी।"

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का यह सब साहित्य पुस्तकाकार छपना शेष है। योगेश्वर गुलेरी (उनके पुत्र) ने इस सम्बन्ध में अपीलें भी निकाली थीं। पर हिन्दी-जगत् मे पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के परिवार की भाँति गुलेरी-परिवार भी कष्ट में है और पूछता कौन है? वैसे 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' नामक इनके प्रसिद्ध निबन्ध साहित्य की स्थायी निधि हैं।

७. *अध्यापक पूर्णसिंह*

वैसे तो 'सरस्वती' के पुराने अंको मे इनके तीन-चार ही निबन्ध प्रकाशित हुए थे, जैसे 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता' आदि; फिर भी उनकी भावात्मक शैली, लाक्षणिकता, कल्पना की उडान आदि ने उनका स्थान साहित्य के इतिहास मे स्थायी रूप से सुरक्षित बना दिया है। अध्यापक पूर्णसिंह स्वामी रामतीर्थ के शिष्य थे और स्वामी राम विवेकानन्द के शिष्य थे, जो स्वयं रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। स्वामी राम की शैली मे एक भाषण की-सी सरलता थी।

यथा—"लगभग तीन मील तक राम दौडता चला गया। कभी-कभी टाँगें बर्फ मे धँस जाती थीं और निकलती थीं बड़ी कठिनाई से। अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया। राम एकदम अकेला, संसार के गुल-गपाड़े और झंझटो से एकदम ऊपर—समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे। नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य! शक्ति का अतुल विस्तार! शब्द का नामो-निशान नहीं, है केवल आनन्द घनघोर! धन्य, धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्र बार धन्य![1]

स्वामी रामतीर्थ मे आवेश था, काव्य था, दृष्टान्त का प्राचुर्य था। ये सब गुण स्वामी रामतीर्थ के जीवनीकार अध्यापक पूर्णसिंह मे भी पाये जाते है। पूर्णसिंह ने अंग्रेजी मे साहित्य रचा है। स्वामी रामतीर्थ की जीवनी लिखी है। एक प्रकार का रस्किन का-सा आदर्शवाद पूर्णसिंह की रचनाओं के मूल मे मिलता है। उसी तरह एकान्तिकता से वे बातें करते है। विषय समाजशास्त्रीय अधिक

१. स्वामी रामतीर्थ ('हिमालय-यात्रा-वर्णन' से)

है, परन्तु शैली गद्यकाव्यात्मक है। इनके निबन्धो का भी कोई संग्रह नही। 'मज़दूरी और प्रेम' से यह उदाहरण उनकी शैली को स्पष्ट करेगा—

> "जब तक जीवन के आरम्भ मे पादरी, मौलवी, पण्डित और साधू-संन्यासी हल, कुदाल और खुरपा लेकर मजदूरी न करेंगे तब तक उनका मन और उनकी बुद्धि, अनन्त काल बीत जाने तक मलिन मानसिक जुआ खेलती रहेगी। उनका चिन्तन बासी, उनका ध्यान बासी, उनकी पुस्तकें बासी, उनका विश्वास बासी और उनका खुदा भी बासी हो गया है।"

८. *विजयानन्द दुबे*

पण्डित विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने वैसे तो 'मा' उपन्यास और अपनी कहानियो मे प्रेमचन्द-शैली का ही अनुकरण किया था, परन्तु अपनी विशेषता उन्होंने 'दुबे जी की चिट्ठी' नाम से 'चॉद' पत्रिका मे नियमित रूप से लिखे पत्रों मे दिखाई। 'शिवशम्भु शर्मा' के बाद 'विजयानन्द दुबे' नामक यह दूसरा साहित्यिक पात्र उतना ही प्रसिद्ध हो गया। यद्यपि हास्य के आलम्बन वही पुराने यानी भंग भवानी, जातीयता और संकीर्णता, फैशनपरस्ती, झूठा बाबूपन आदि थे, फिर भी अपनी शैली की विशेषता के कारण 'दुबे जी' यानी विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक का नाम भुलाया नहीं जा सकता। कभी-कभी तो विषय कुछ नहीं होता था, साधारण-सी घटना पर चुटकी लेते-लेते पूरी लम्बी चिट्ठी लिख डालते थे। आपकी रचनाओं को वैसे तो विशुद्ध निबन्ध की कोटि मे नही रखा जा सकता। परन्तु पत्रकारिता के माध्यम से निबन्ध की सेवा करने का श्रेय द्विवेदी जी को जैसे है, हिन्दी मे नवीन प्रकार की व्यंग-विनोद-उद्भावना का श्रेय दुबेजी को है। यद्यपि कालानुक्रम से कौशिकजी बाद मे आते है, फिर भी हास्यप्रधान निबन्धो की पुरानी धारा कौशिकजी ने आगे बढाई। इस बात का उन्हे पूरा श्रेय है। दुबेजी का चिट्ठी 'चाँद' की फाइलों मे खो जाने से उसका पूरा आनन्द पाठक नहीं उठा सकते है। इनमें से भी चुने हुए निबन्ध पुस्तकाकार अवश्य छपने चाहिएँ।

६. *पद्मसिंह शर्मा*

समालोचक-शिरोमणि पण्डित पद्मसिंह शर्मा का जन्म सम्वत् १६३३ में हुआ, मृत्यु सम्वत् १६८६ मे। सन् १६०४ में आप गुरुकुल कांगडी मे अध्यापक रहे। 'परोपकारी', 'अनाथ रक्षक', 'भारतोदय' आदि पत्रो का सम्पादन भी किया। बाद मे ज्ञानमण्डल, काशी मे पुस्तकों के सम्पादक बने। वहीं

से 'बिहारी की सतसई' भूमिका भाग का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। सम्वत् १९८६ के मुज़फ्फरपुर वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति हुए और सम्वत् १९८० मे 'बिहारी की सतसई' पर मंगलाप्रसाद-पारितोषिक मिला। इनके निबन्धो का संग्रह 'पद्म पराग' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

आपकी भाषा-शैली के विषय में प्रेमचन्द जी ने लिखा था—"आपमें नवीन और प्राचीन का अभूतपूर्व मेल हो गया था। हिन्दी मे आप एक खास शैली के जन्मदाता हैं—जिसमे चुलबुलापन है, शोखी है, प्रवाह है और उसके साथ ही गाम्भीर्य भी। उनका पाण्डित्य उनके काबू में है। वह उस पर शह-सवार की भाँति सवार होते हैं।"

स्व० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ने उनकी भाषा शैली के बारे मे लिखा था—"शर्मा जी साहित्य के पूरे मर्मज्ञ और ज्ञाता थे। आलोचना तो उनकी तीखी होती ही थी। ब्रजभाषा के पक्के प्रेमी और प्राचीन कवियो के पूरे भक्त थे। उनकी भाषा बड़ी चटपटी और चुलबुली होती थी। हँसी-मज़ाक की तो वे एक पुड़िया थे। उन्हे तुलनात्मक समालोचना का प्रवर्त्तक कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है। शर्माजी फारसी के फ़ाज़िल, उर्दू के उस्ताद और हिन्दी के हीरा ही नहीं, संस्कृत-साहित्य के भी सुधानिधि थे।"

उनके निबन्ध 'बिहारी की बहुज्ञता' से एक उदाहरण उनकी शैली का पर्याप्त होगा—

> 'कटि' (कामिनी की कमर) भी कुछ ऐसे सूक्ष्म और अलख है। श्रुति—शब्द—प्रमाण—द्वारा सुनते है कि कमर है,—'सनम सुनते है तेरे भी कमर है'—फिर अनुमान करते है कि यदि कमर नही है तो यह शरीर—प्रपञ्च-स्तन-शैल, मुख-चन्द्र आदि किसके सहारे ठहरे हुए है। 'ब्रह्म' नही है तो यह विश्व-प्रपच—हिमालयादि पर्वत, चन्द्रादि ग्रह-मण्डल किसमे स्थित हैं—कल्पित है। इसलिए कटि—ब्रह्म अवश्य है। इस तत्त्व को कटि ब्रह्म के सत्तास्वरूप को—निरन्तर ध्यान द्वारा किसी प्रकार बुद्धि मे ठहराते है। फिर भी 'अलख लखी नहि जाइ' उसका साक्षात्कार नही होता, नजर नही आती, दिखलाई नही देती—'कहाॅ है किस तरफ को है, किधर है,' यही कहते रह जाते है।
>
> 'सूछम कटि परब्रह्म-सी अलख लखी नहि जाय।'
>
> पूर्ण दार्शनिक 'पूर्णोपमा' है। परब्रह्म उपमान। कटि उपमेय। लखी नही जाय, साधारण धर्म। 'सी, या लौं' वाचक। देखा वाचक! कैसी मनोहर पूर्णोपमा है!

१०. रामचन्द्र शुक्ल

सुप्रसिद्ध साहित्येतिहासकार और समालोचक रामचन्द्र शुक्ल ने मनोभावों पर निबन्ध लिखकर एक अपनी ही विशिष्ट व्यक्तित्वपूर्ण शैली हिन्दी में उपस्थित की।

"उनकी भाषा संयत, परिष्कृत, प्रौढ़ तथा विशुद्ध होती है, उनमें एक प्रकार का सौष्ठव-विशेष है। उनमें गम्भीर विवेचना, गवेषणात्मक चिन्तन एवं निर्भ्रान्त अनुभूति की पुष्ट व्यंजना सर्वदा वर्तमान रहती है। निबन्ध मे स्वच्छन्दता का विशेष अवकाश होने के कारण भाव-व्यंजना भी सरस हुई है। उनमे अपेक्षाकृत वाक्य कुछ बडे हुए हैं, भाषा अधिक चलती और व्यावहारिक हुई है। इनकी निबन्ध-रचना इस बात का भी द्योतन करती है कि व्यावहारिक, सरस और बोधगम्य भाषा मे किस प्रकार मानुषिक जीवन से सम्बद्ध विषयो पर विचार प्रकट किये जाते हैं।"[१]

रामचन्द्र शुक्ल की विशेषता थी व्यंग के छींटे। ऐसे व्यंगात्मक छींटो के लिए उन्होंने उर्दू का आश्रय लिया है। वैसे मुहावरासाज़ी के लिए मुहावरासाज़ी उन्होंने नहीं की। अलबत्ता आलोचनात्मक निबन्ध अधिक लिखते रहने के कारण एक प्रकार की सूक्ष्म तार्किकता उनमे विद्यमान है। उनके भावात्मक निबन्धों मे यह वृत्ति स्पष्टतया लक्षित होती है। 'पै धन बिदेस चलि जाति यही है ख्वारी।' वाली भारतेन्दु-उक्ति का समर्थन रामचन्द्र शुक्ल के इस उदाहरण से देखिये—

> "योरप के देश-के-देश इस धुन मे लगे कि व्यापार के बहाने दूसरे देशो से जहॉ तक धन खीचा जा सके, बराबर खींचा जाता रहे। पुरानी चढाइयो की लूट-पाट का सिलसिला आक्रमण-काल तक ही—जो बहुत दीर्घ नही हुआ करता था—रहता था। पर योरप के अर्थोन्मादियो ने ऐसी गूढ, जटिल और स्थायी प्रणालियॉ प्रतिष्ठित की जिनके द्वारा भूमण्डल की न जाने कितनी जनता का क्रम-क्रम से रक्त चुसता चला जा रहा है—न जाने कितने देश चलते-फिरते कंकालो के कारागार हो रहे है।"

रामचन्द्र शुक्ल की निबन्ध-शैली पर मैने अन्यत्र लिखा है कि—"शुक्लजी ने ये निबन्ध १९१९ मे लिखे थे। १९३५ में इन्दौर मे दिये भाषण में यानी सोलह वर्ष बाद भी उनकी हिन्दी-निबन्ध-कला के विषय मे शिकायत ज्यों-की-त्यों बनी है।"

---

१. 'हिन्दी की गद्य-शैली का विकास, पृष्ठ ११५–११६।'

"ऐसे प्रकृत निबन्ध, जिनमे विचार-प्रवाह के बीच लेखक के व्यक्तिगत वाग्वैचित्र्य और उनके हृदय के भावो की अच्छी झलक हो, हिन्दी मे कम देखने मे आ रहे है।"[१]

शुक्लजी के निबन्धो की सबसे बडी कमज़ोरी उनका नैतिक प्रश्नों से अधिक उलझना है। 'समीक्षा की समीक्षा' मे पृष्ठ ६ पर गुलाबराय और नन्ददुलारे वाजपेयी के अभिमत हमने अपने समर्थन मे दिये है—

श्री गुलाबराय ने शुक्लजी के मनोवैज्ञानिक निबन्धो की विशेषताएँ बताते हुए प्रधान गुण बताया है—"ये मनोवैज्ञानिक होते हुए भी अपने लक्ष्य मे आचार-सम्बन्धी है। इनमें उस लोक-मंगल और लोक-संग्रह की भावना निहित है जिसके कारण आचार्य शुक्लजी ने गोस्वामी तुलसीदास को अपना आदर्श कवि माना।"

कटी-कटाई रूढ़ नैतिकता के आग्रह की छाप शुक्लजी के सारे निबन्धो को प्रवचनात्मक बना देती है। इसी कारण वे तुलसी की भाँति अच्छाई-बुराई के द्वैत के फेर मे सर्वत्र पड़े दिखाई देते है।

नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपनी 'हिन्दी साहित्य–बीसवीं सदी' पुस्तक में रामचन्द्र शुक्ल पर तीन प्रदीर्घ निबन्ध—प्रायः ३२ पृष्ठ लिखकर उसके अन्त में जो बात कही है, वह बहुत सही है—"अन्त मे हम फिर कहेंगे कि शुक्लजी की सारी विचारणा द्विवेदी-युग की व्यक्तिगत, भावात्मक और आदर्शोन्मुख नीतिमत्ता पर स्थित है। समाज-शास्त्र, सस्कृति और मनोविज्ञान की मीमांसा उन्होने नही की है। प्रवृत्ति-विषयक उनकी धारणा भारतीय धार्मिक धारणा की अपेक्षा पाश्चात्य अधिक है। उनका काव्य-विवेचन भी प्रबन्ध-कथानक और जीवन-सौन्दर्य के व्यक्त रूपो का आग्रह करने के कारण सर्वांगीण और तटस्थ नहीं कहा जा सकता। नवीन युग की सामाजिक और सांस्कृतिक जटिल-ताओं का विवेचन और उनसे होकर बहने वाली काव्य-धारा का आकलन हम शुक्लजी मे नहीं पाते। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि शुक्लजी जिस युग के प्रतिनिधि है, हम उसको पार कर चुके हैं। वे हमारी साहित्य-समीक्षा के बालारुण है। किन्तु दिन अब चढ चुका है और नये प्रकाश और नई ऊष्मा का अनुभव हिन्दी-साहित्य-समीक्षा कर चुकी है।"[२]

इस प्रकार से रामचन्द्र शुक्ल के पास भाषा-शैली, विचारों की सुसूत्रता खण्डन-मण्डनात्मक वाद-विवादपूर्ण विषय-प्रतिपादन आदि गुण होते हुए भी,

१. 'चिन्तामणि', भाग २, पृष्ठ २५६।

२. 'हिन्दी-साहित्य—बीसवीं शताब्दी', पृष्ठ ८७।

उनके निबन्ध शुद्ध आत्म-निबन्धों की कोटि में नहीं आ पाए, इसका कारण उनका कसा हुआ मर्यादावादी दृष्टिकोण था। एक कुशल निबन्ध-लेखक के लिए यह आवश्यक है कि वह मर्यादा को कुछ तोड़े भी, कुछ उन्मुक्त उड़ान ले सके। परन्तु मैथ्यू आरनाल्ड की भाँति शुक्लजी अपने निबन्धों मे अपनी शुद्धिवादिता के आग्रह से बराबर चिपटे रहे और परिणाम स्पष्ट है कि उनके निबन्धों मे वह काव्यात्मकता नही आ पाई, वह सहज विश्रब्धालाप वहाँ लक्षित नही होता।

इस दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल और श्यामसुन्दरदास की भाषा-शैलियाँ बहुत-कुछ तौलनीय हैं।

११. श्यामसुन्दरदास

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के संस्थापक, 'हिन्दी-शब्द-सागर' के एक सम्पादक तथा 'साहित्यालोचन', 'रूपक रहस्य' आदि ग्रन्थों के प्रणेता श्यामसुन्दरदास की प्रधान विशेषता यह रही है कि उन्होंने हिन्दी-भाषा को व्यापक बनाया। तत्सम से अधिक तद्भव रूपों पर उनका ध्यान था, चाहे वे संस्कृत के हों या उर्दू के। उन्होंने स्पष्टतः लिखा है कि—"जब हम विदेशी भावों के साथ विदेशी शब्दों को ग्रहण करें तो उन्हें ऐसा बना लें कि उनमे से विदेशीपन निकल जाय और वे हमारे अपने होकर हमारे व्याकरण के नियमों से अनुशासित हों।" यह दृष्टिकोण की सर्वकालता उनकी शैली को अधिक बोधगम्य बनाती है।

'साहित्य सन्देश' के 'श्यामसुन्दरदास-विशेषांक' मे लिखते हुए मैंने अनेक वर्षों पूर्व लिखा था—

"शैली-सम्बन्धी आचार्य श्यामसुन्दरदास जी के मत बहुत ही प्रगतिशील और विचारणीय हैं। वाल्टर रैले ने 'शैली' पर अपने सुन्दर प्रबन्ध में पृ० १२७ पर समस्त शैली को अन्ततः मन और आत्मा की एक व्यञ्जना और संकेत-भंगिमा माना है। सौन्दर्यवादी समीक्षक वाल्टर पेटर ने गुस्ताव फ्लाबेयर के शैली को साँचा मानने के मत की विस्तृत समीक्षा करते हुए अपने 'प्रशस्तियाँ' नामक ग्रन्थ के प्रथम अध्याय 'शैली' मे पृ० १४ पर कहा है कि यदि शैली ही मनुष्य है तो शैली निश्चय निर्व्यक्तिक (इम्पर्सनल) है। बाबू श्यामसुन्दरदास जी ने अपने 'साहित्यालोचन' मे शब्द की शक्ति, गुण और वृत्ति की विस्तृत चर्चा करके वाक्य-विन्यास, पद-विन्यास, अलंकारों तथा भाषा-पद्धति के स्थान की चर्चा की है। सर्वत्र आपका दृष्टिकोण विशुद्ध भार-

तीय रहा है। एकाध स्थल पर पाश्चात्य प्रज्ञात्मक तथा रागात्मक शैली-भेद का उल्लेख है, परन्तु मुख्यतः माधुर्य, ओज, प्रसाद के प्रसंगानुकूल मिश्रण तथा व्यंग्यार्थ का आधिक्य उत्तम शैली के लिए आपने आवश्यक धर्म माने हैं। स्वयं बाबूजी के निबन्धों पर इन कसौटियों को लगाने से वे पूरे उतरते है। यद्यपि बाबूजी के भावात्मक निबन्ध बहुत थोडे हैं, आलोचनात्मक अधिक है।

'साहित्यालोचन' मे आपने आधुनिक आलोचको मे प्रचलित कुछ दोषो को गिनाया है जिनका जानना आवश्यक है। १—पारिभाषिक शब्दो का अज्ञान, २—शब्द-शक्ति का अज्ञान, ३—साहित्य की आत्मा न पहचानना, ४—साहित्य की मानतुला का अनिश्चय, ५—लक्ष्य-भ्रष्ट होना, अनासक्त भाव के न रहने से पक्षपात का आना स्वाभाविक है, ६—भाषा-शैली की गहनता तथा अस्पष्टता।"

उनकी शैली का एक उदाहरण 'देवनागरी लिपि' पर उनके लेख से दे रहा हूँ—

"देवनागरी लिपि के सम्बन्ध मे कुछ लोगो का आक्षेप है कि उसमे कई बातो के सुधार की आवश्यकता है। इन लोगो का कहना है कि हमारी भाषा मे कई नवीन उच्चारण आ गए है, और उनके लिए नवीन चिह्नो का बनना आवश्यक है। दूसरे लोगो का कहना है कि हमारी लिपि मे एक बडी भारी त्रुटि यह है कि उसमे शीघ्रता से लिखा नही जा सकता और छापे मे बहुत अधिक अक्षरो को ढालने की आवश्यकता पडती है। इन आपत्तियो को महत्त्व देने के लिए यह भी कहा जाता है कि राष्ट्र के भविष्य का ध्यान रखकर हम लोगो को अपनी लिपि मे ऐसे सुधार करने चाहिएँ, जिससे वह समस्त देश मे स्वीकृत हो सके।"

१२. माखनलाल चतुर्वेदी

भावात्मक गद्य लिखने की एक विशेष पद्धति 'एक भारतीय आत्मा' ने हिन्दी मे रूढ़ की। बाद में वह गद्य-काव्य कहलाई। चतुरसेन शास्त्री का 'अन्तस्तल', वियोगी हरि के भावना-कण-युक्त छोटे-छोटे लेख, रायकृष्णदास, शान्तिप्रसाद वर्मा (चित्रकार); डॉ० रघुबीरसिह, दिनेशनन्दिनी डालमिया, जनार्दनराय नागर आदि के इस दिशा में प्रयोग इसी शाखा के प्रफुल्ल कलिका-सुमन और फल आदि हैं। माखनलाल जी एक मँजे हुए वक्ता है। सूझ से भरे उनके मार्मिक वाक्य श्रोताओं के हृदय मे सीधे बिंध जाते हैं। स्वामी

रामतीर्थ और अध्यापक पूर्णसिंह की जो गद्य-शैली थी उसमे की नीत्यात्मक उपदेशप्रधानता कम करके सौन्दर्य-संवेदनक्षम सूक्ष्मता और कोमलता की छटा मिलाने से माखनलालजी की गद्य-शैली की कल्पना हम कर सकते है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने यद्यपि 'प्रताप' और 'कर्मवीर' साप्ताहिको मे बहुत-सा लिखा है, प्रति सप्ताह और प्रति मास। और उसमें से चुनकर बहुत अच्छे-अच्छे गद्य-खण्ड सँजोये जा सकते है, जैसे कि स्वर्गीय गणेशशंकर, सुभद्राकुमारी चौहान और सुभाषबाबू पर उनके लिखे लेख। परन्तु इस पत्र-कारितापूर्ण साहित्यिक छटा वाले लेखन को छोड दें, तो भी 'साहित्य देवता' उनके गद्यकाव्यात्मक भाव-निबन्धो का एक बहुत महत्त्वपूर्ण संग्रह है। यह इस ग्रन्थ का, (हिन्दी के अन्य कई ग्रन्थों की भाँति) दुर्भाग्य रहा है कि यह प्रणयन के दो दशक बाद प्रकाशित हुआ। परन्तु उसमें की उलझी हुई, अलंकार-भारयुक्त. कहीं-कहीं दूरान्वययुक्त समस्त पदावली छोड दें तो उसमे की मौलिक, स्वच्छन्द कल्पना-विहारमयी गद्य-रचना आधुनिक पद्य के बहुत निकट की है। उन गद्य-खण्डो मे नया उगता हुआ बलिपन्थी राष्ट्र-प्रेम, पुराना वैष्णव तथा निर्गुण अध्यात्मवादी प्रेम और काव्य की प्रतीक-संयोजना का प्रेम एकाकार हो गया है।

'साहित्य देवता' की गद्य-शैली पर मराठी के रोमांटिक कवि यथा गडकरी की सूक्ष्म ऊहा आदि रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी रामतीर्थ आदि की दृष्टान्त-बहुलता, भव्य और क्लासिकल शब्दों के साथ उर्दू और बोल-चाल के या 'भदेस' शब्दो का पचमेल उपयोग, पत्रकार की-सी प्रासंगिक घटनाओं को साधारणीकरण की इयत्ता तक उठा ले जाने का नित्य का करतब और और देश-काल के दो खूँटों पर भावना की झीनी डोरी पर चलते हुए अपना सन्तुलन न खोने की नटगिरी के एक साथ दर्शन होते है।

गांधीजी पर लिखे गए उनके एक गद्य-काव्यात्मक निबन्ध का एक खण्ड ऊपर के विवेचन का प्रमाण है—

> "एक वाणी है, जो झोपडियो की कराह को राजमहलो मे ले जाकर टकराती है और राजमहलो के अपमानो को झोपडियो के सेवा-पथ मे मिले प्रभु के प्रसाद की तरह ग्रहण करती है।
>
> एक वाणी है, जो गलियो मे, कूचो मे, झोंपडियो मे, महलो मे, पहाडो मे, गुफाओ मे, भीडो मे, एकान्तो मे, विजयो मे, विजय-पथ की परा-जयो मे, 'चले चलो' का स्वर लिये, बराबर सुनाई पडती चली आ रही है।
>
> एक वाणी है, कि समस्त धर्मो के देव-मन्दिरो मे जिसका रथ गतिशील,

जिसका पथ उन्मुक्त है—किन्तु कॉपते सिहासनो का आडम्बर है कि उस वाणी को वे न सुने।"

हिन्दी मे माखनलाल चतुर्वेदी पर आलोचनात्मक सामग्री बहुत ही कम है—न उनकी कविता पर, न उनके गद्य पर। रामवृक्ष बेनीपुरी का एक 'रेखा-चित्र' और 'दिनकर' जी की 'मिट्टी की ओर' मे एक लेख या 'संगम' के उनके सम्बन्ध मे प्रकाशित विशेषांक मे मेरा एक लेख (जो बाद मे 'व्यक्ति और वाङ्मय' मे प्रकाशित हुआ।) बहुत ही अपर्याप्त सामग्री है।

यह बात सही है कि जैसे रस्किन और कार्लाइल के जमाने का गद्य अब श्रेष्ठ गद्य नही माना जाता, न आस्कर वाइल्ड या चेस्टरटन की विरोधाभासप्रियता अब शैली की विशेषता मे शुमार की जाती है, फिर भी उनका गद्य के विकास के इतिहास मे अपना एक विशेष मूल्य है। माखनलाल चतुर्वेदी के गद्य का भी महत्त्व उसकी शैली मे है, चाहे उसका अलंकरणमय उलझन-भरा रूप आज कुछ पुराना जान पड़े।

१३. गुलाबराय

बाबू गुलाबराय मूलतः दर्शन के एम० ए०, बाद में छतरपुर रियासत मे बहुत दिनो तक मुलाजिम रहे, आगरा में आकर जैन-बोर्डिंग के सुपरिन्टेंडेण्ट, 'साहित्य सन्देश' के उसकी स्थापना से ही सम्पादक और संप्रति सेंट जान्स कॉलेज में हिन्दी-साहित्य के सम्माननीय प्राध्यापक हैं। मधुमेह और वयोवृद्धता के बावजूद उनकी मूल जिन्दादिली बराबर बनी हुई है और कभी-कभी 'फिर निराशा क्यो ?' और 'मेरी असफलताएँ' में सम्मिलित निबन्धों की भाँति एकाध व्यक्ति-निबन्ध लिख ही डालते है। उनकी शैली की सबसे बडी विशेषता उसमें का शिष्ट, संयत, सूक्ष्म परिहास है। वे अपने ऊपर भी हँस लेते हैं। उनकी भैंस, उनका भुलक्कड़पन, उनकी कई और बातों का जानकारी उनके निबन्धो से पाठको को होती है। परन्तु संस्कृत-साहित्य-शास्त्र के उद्भट विद्वान् होने से उनकी शैली मे सन्दर्भशीलता (एल्यूजिवनेस) भी बहुत आ गया है और मूलतः दर्शन के आभासक और अध्यापक होने से निबन्धो में नीति-उपदेशभरी पुट भी कम नहीं रहती।

बाबूजी की गद्य-शैली की दूसरी खूबी यह है कि वह सदा प्रसन्न, एक ही गति से चलने वाली शैली है। उनमें कहीं भी उतार-चढ़ाव नहीं। वे गुस्सा दिलाने पर भी गुस्सा नहीं होते। हर विषय का दूसरा पहलू भी देखने की सहनशीलता उनमे हमेशा मौजूद रहती है। यह अहिंसक उदारता उनके निबन्धों

को एक प्रकार की सार्वजनीन मानवीय सहानुभूति से भर देती है।

एक उदाहरण देखिए—

"विश्व-प्रेम उन्हींके लिए कठिन एवं दुस्साध्य है, जो अपनी आत्मा को पंच महाभूतों का ही गुण मानते हैं। प्रकृतिवाद व्यक्तित्व से बाहर नहीं जा सकता, किन्तु उसके मानने वाले भी व्यक्तित्व से बाहर जाने का प्रयत्न किया करते हैं। वे भी पर-हित-साधन के पक्षपाती हैं। प्रकृतिवादियों की आत्मा हमारी आत्मा से भिन्न नहीं। जब विस्तार ही आत्मा का गुण है, तब फिर आत्मा के विस्तार को कौन रोक सकता है। जादू वही है जो सिर पर चढ़कर बोले।"[1]

यों गुलाबरायजी के उत्कृष्ट निबन्धों का संग्रह 'मन की बात' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

१४. *शिवपूजनसहाय*

'शिव' नाम से 'आज' में नियमित रूप से लिखे हुए निबन्धों का एक संग्रह 'कुछ' नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसकी समालोचना मैंने 'सम्मेलन-पत्रिका' मे सन्' २१ में की थी। परन्तु 'देहाती दुनिया' के उपन्यास-लेखक, 'मतवाला' से 'हिमालय' तक कई पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक के नाते शिव-पूजनसहाय जी का गहरा साहित्यानुभव और विशाल दृष्टि हिन्दी-साहित्य की अपनी निधि है। प्रोत्साहन की तो कहाँ तक कहें, 'आजकल' में सन्' ४६ में मेरा 'मुँह' निबन्ध छपा। देखता क्या हूँ कि 'हिमालय' में एक पृष्ठ उसकी मुहावरेसाज़ी की प्रशंसा शिवजी ने लिखी। यह गुण, कि नये लेखकों में पाई जाने वाली अच्छाइयों की बराबर दाद देते रहें, बहुत कम होता जा रहा है।

'कुछ' शीर्षक से प्रकाशित निबन्ध-संग्रह में शिवपूजनसहाय जी के निबन्धों की निम्न विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनके लिए विषय-प्रधान नहीं है, कुछ भी विषय काफ़ी होता है। उनमें परिहास और व्यंग की पुट बराबर रहती है। मुहावरे की मीनाकारी और लोकोक्ति का साधन अवश्य दर्शनीय है। यद्यपि विषय प्रासंगिक महत्त्व का या वैसे नगण्य-सा जान पड़े फिर भी वे अपनी लेखनी के चमत्कार से उसमें 'अपूर्ववस्तुनिर्माण' अवश्य कर देते हैं। शिवपूजन जी के कई उत्तम निबन्ध पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं। सम्प्रति बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् के प्रधान मन्त्री के नाते वे 'साहित्य' त्रैमासिक का सम्पादन करते हैं।

---

१. 'विश्व-प्रेम'।

१५. डॉ० भगवानदास

माननीय श्री श्रीप्रकाश जी के पिता डॉक्टर भगवानदास एक उच्च कोटि के दार्शनिक है। आपकी लिखी हुई सब धर्मों के 'सार-संग्रह' की पुस्तक बहुत महत्त्वपूर्ण है। चूँकि गांधीजी के सर्व-धर्म-सम-भाव की भी भित्ति वही पुस्तक है। दार्शनिक तथा आध्यात्मिक विषयो पर आपकी निबन्ध-रचना अधिक है। परन्तु हिन्दी मे प्रासादिक शैली से उन उर्दू शब्दो का, जो हिन्दी मेपच गए है, बहिष्कार न करते हुए आपने बहुत-सा फुटकर भी लिखा है। बंगाल के काल (सन् १९४३) के समय दिल्ली मे एक बडा-सा यज्ञ होने जा रहा था और उसमे अन्न धान्य की बहुत-सी राशि 'अग्नये स्वाहा' की जा रही थी तब यज्ञ-संस्था पर डॉ० भगवानदास का एक उद्धरणों सहित बडा ही मार्मिक लेख, 'कल्याण' के 'नारी-अंक' मे आधुनिकाओ की फैशनपरस्ती के विरुद्ध लेख, और इधर शिक्षण मे धर्म के महत्त्व पर लिखा गया उनका रेडियो-भाषण मेरी बात के प्रमाण है। डॉक्टर साहब पाश्चात्य और भारतीय दर्शन पद्धतियो के बडे ही विनयशील मर्मज्ञ अध्येता है और धर्मों के तत्त्व को ग्रहण करने मे जिस तौलनिक पद्धति को उन्होने अपनाया है, उसका हमारे लौकिक प्रजातन्त्र में अपना महत्त्व है। चन्द्रहास, काशी में वे सम्प्रति अपनी वानप्रस्थ आयु व्यतीत कर रहे हैं। वयोवृद्धता के कारण यद्यपि वे कुछ नहीं कर पाते, परन्तु जिन सिद्धान्तो का जीवन मे विचार किया उन्हे आचार में ढालने मे सदैव निरत रहते हैं। हिन्दी के सुधारक लेखको की कोटि मे उन्हें रखना चाहिए।

१६. राहुल साकृत्यायन

महापण्डित त्रिपिटिकाचार्य राहुल सांकृत्यायन ने विपुल यात्रा मे लिखा है। जिसमे से 'पुरातत्त्व-निबन्धावली', 'यात्रा निबन्धावली', 'साहित्य-निबन्धावली' और उनकी दो खण्डो में प्रकाशित बृहत् आत्म-कथा 'जीवन-यात्रा' और 'नये भारत के नये नेता', 'सरदार पृथ्वीसिह', 'स्तालिन' आदि जीवनियों में तथा अनेकानेक प्रवास-वर्णनात्मक ग्रन्थो मे (यथा 'तिब्बत मे तीन वर्ष', 'किन्नर देश मे', 'हिमालय परिचय कई खण्ड', 'रूस मे ढाई साल', 'लंका' आदि) उनके निबन्धकार के दर्शन विशेष रूप से होते है। सरल-सहज प्रवाह-मयी भाषा, तथ्य जुटाने की और जानकारी देने की ओर विशेष रुझान, रूढ़ि-वादिता पर प्रखर प्रहार, उदार बुद्धिवाद और कहानी कहने की-सी सीधी-सादी शैली राहुल जी के लेखन की विशेषताएँ है। उनकी प्रखरता देखनी हो तो

'तुम्हारी क्षय हो' नामक उनकी छोटी-सी पुस्तक में वह दर्शनीय है, और उनकी खोजी वृत्ति 'तिब्बत मे पाई सिद्ध-परम्परा' और हिन्दी की अपभ्रंश-कविता पर उनके लेखों मे दर्शनीय हैं। निरन्तर अन्वेषण, सतत जागृत जिज्ञासा उनके व्यक्तित्व का एक बहुत बडा भाग है। उसीने उन्हें घुमक्कड़ बनाया और उनके आत्म-चरित में और उसी प्रकार से 'घुमक्कड-शास्त्र' आदि ग्रन्थों मे सूक्ष्म परिहास की बड़ी छटाएँ हैं। वे अपनी कहानियों मे भी निबन्धकार की तरह से लिखते हैं, जब कि निबन्धों में भी कहानी-जैसी सूत्रमयता रहती है। भाषा के विषय में राहुलजी दुराग्रही नहीं हैं। उनके लिखने मे जैसे संस्कृत-प्राकृत-पालि के शब्द सहज आते हैं, वैसे ही उर्दू-फारसी के या तिब्बती-रूसी तक के शब्द अपने-आप आते-जाते हैं। उनकी लेखनी ने जैसे कहीं रुकना जाना ही नहीं।

१७. वियोगी हरि

वियोगी हरि जी एक समय मे कवि के नाते प्रसिद्ध थे। व्रजभाषा के काव्य 'वीर सतसई' को मंगलप्रासाद पारितोषिक मिला था। परन्तु जब से हरिजन-सेवा के कार्य मे सक्रिय रूप से वे निमग्न हो गए, साहित्य की ओर ध्यान देने को कम समय उन्हे मिल पाता है। वैसे वे बडी सन्त-प्रकृति के व्यक्ति हैं और अपने भावात्मक गद्य-खण्डों में उन्होंने उद्बोधनपरक ही विशेष लिखा है। तरुणों को और जीवन के हर पथधर को सम्मुख रखकर प्रिन्स क्रोपाटकिन की पुस्तक की तरह उन्होने छोटे-छोटे उपदेश भी दिये हैं। वे 'जीवन-साहित्य' मे पहले छपे थे—

> "किसानों और मजदूरो की टूटी-फूटी झोपडियो मे ही प्यारा गोपाल वंशी बजाता मिलेगा। वहाँ जाओ और उसकी मोहिनी छवि निरखो। जेठ-बैसाख की कडी धूप मे मजदूर के पसीने की टपकती हुई बूँदों मे उस प्यारे राम को देखो। दीन-दुर्बलो की निराशा-भरी आँखो मे उस प्यारे कृष्ण को देखो। किसी धूल-भरे हीरे की कनी में उस सिरजनहार को देखो। जाओ पतित, पद-दलित अछूत की छाया मे उस लीला-विहारी को देखो।"

१८. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

बख्शीजी 'सरस्वती' के सम्पादक के नाते और 'पंच-पात्र','विश्व-साहित्य' आदि ग्रन्थो के प्रणेता आलोचक के नाते विशेष प्रख्यात हैं। आपका एक निबन्ध-संग्रह 'और कुछ' नाम से प्रकाशित हुआ है, इसमे ऐसे विषयो पर

निबन्ध है : 'कथा-वस्तु', 'कला का विन्यास', 'आलोक और तिमिर', 'कल्पना और सत्य', 'नरेन्द्र', 'निशाकाल', 'वरदान', 'सत्य और झूठ', 'एक चरित्र', 'दोष किसका', 'गोवर्द्धन मिश्र', 'गुडिया', 'मोटर स्टैंड पर', 'दीपावली', 'मेरे लिए','यवनिका पतन', आदि। इन निबन्धो में कही संस्मरणो का आनन्द आता है तो कही रेखा-चित्रो का। 'कला का विन्यास' निबन्ध मे एक ही कहानी गोपालराम गहमरी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और प्रेमचन्द अलग-अलग तरीके से कैसे लिखते इस बात का वर्णन है। 'मोटर स्टैंड पर' एक सूचनिका (रिपोर्ताज-मात्र है। कही-कही लेखक अपने आत्मकथात्मक संस्मरण सुनाने लगता है; जैसे 'दोष किसका' या 'मेरे लिए'। कहीं निरा रेखाचित्र-सा पढने को मिलता है; जैसे 'गोवर्द्धन मिश्र' में।

उनके निबन्ध-लेखक पर उनका आलोचक सदा जाने-अनजाने सवार रहता है। जैसे विशुद्ध निबन्ध-रचना वे करना ही नही चाहते। वे निबन्ध के द्वारा समाज-जीवन की आलोचना के विषय मे अपने विचार जैसे सँजोकर रखते है। परिणामत. उनकी शैली भी निबन्धकार की भाँति स्वच्छन्द, मुक्त, भाव-विचार-सम्मिश्रित न रहकर बहुत-से बन्धनो और बहुत-सी मर्यादाओं मे से होकर गुजरती रहती है। कहानी कहते-कहते बीच मे उद्धरण दे देते हैं—"क्या आपने शेक्सपीयर की ये लाइने नही पढ़ी हैं ?" 'यवनिका पतन' निबन्ध मे गद्य-काव्य-जैसा भावात्मक गद्य लिखते हैं और कहीं-कही पत्रों के टुकड़े। कुल मिलाकर निबन्ध-जैसी कोई कटी-कटाई चीज़ उनके पास नहीं। हाँ,कथा साहित्य के विषय मे आलोचक बख्शी जी के विचार हर निबन्ध मे बिखरे हुए मिलते हैं। वे सजग पाठक रहे हैं; देशी-विदेशी-साहित्य का उन्होंने अध्यवसाय पूर्वक अनुशीलन किया है, सम्पादक के नाते कई नवीनतम, कच्ची, अच्छी बुरी कृतियों को उन्हे नित्य ही पढ़ना पडता है। यह सब सामग्री वे रुचिकर कथापूर्ण ढंग से एकत्र कर देते है, वे चिन्ता नहीं करते कि इसे निबन्ध कहाँ तक माना जायगा या नहीं ?

इस उद्धरण से श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की शैली और साहित्य मे उनके अभीष्ट का अच्छा अन्दाजा लगाया जा सकता है—

> "जिन कथाओ का प्रभाव जितना ही अधिक स्थायी है, उतनी ही अधिक महत्ता उन कथाओ की है। कथाकार हमे कल्पना के एक मोह-जाल मे डाल देता है; परन्तु कथा का अन्त हो जाने पर भी वह मोह-जाल नहीं होना चाहिए। यदि कथा पढ़ते समय हमे यह ज्ञान पडा कि ये सारी बातें बनावटी हैं, ये सम्भव नही है, तो तुरन्त कथा से हमारी विरक्ति हो

जाती है। कथा मे स्वाभाविकता चाहिए। घटनाएँ विलक्षण हो, पर अविश्वसनीय नही, तभी उनसे विरक्ति नही होती। इसीलिए कथावस्तु चाहे जैसी भी हो, कथा के लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि वह पाठको को आकृष्ट कर सके।"

१६. रायकृष्णदास

'छाया पथ', 'पागल' आदि गद्य-काव्यों के लेखक, खलील जिब्रान के हिन्दी मे प्रथम अनुवादक, प्रसाद, विनोदशंकर व्यास तथा वाचस्पति पाठक के साथ-साथ छोटी-छोटी भाव-कहानियो के लेखक, 'भारतीय चित्र-कला' तथा 'भारतीय शिल्प-कला' ग्रन्थों के कला-मर्मज्ञ प्रणेता श्री रायकृष्णदास 'भारत-कला-भवन' के अधिष्ठाता तथा काशी की साहित्यिक परम्परा के विख्यात निर्वाहक हैं। आपके अधिकतर निबन्ध कला की मौलिक विवेचना को लेकर लिखे गए हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'हंस', 'कला', 'प्रतीक', 'कलानिधि' आदि पत्रिकाओं में आपने अपनी खोज-बीन, स्वतन्त्र चिन्तन और सौन्दर्य दृष्टि का परिचय दिया है। आपके निबन्धों मे प्राचीन भारतीय कला-मीमांसा के अध्ययन की पुट बराबर बनी रहती है।

रायकृष्णदास जी की भाषा-शैली सम्भाषण-जैसी, निष्कपट, पारदर्शी, सब प्रकार के शब्दों को यथोचित अपनाती हुई, संस्कृत, गरिमायुक्त और इतिहास-पुरातत्त्व की छटा लिये हुए होती है। एक ओर 'प्रसाद की याद'-जैसे भावभरे संस्मरण और दूसरी ओर 'राम के वन-गमन का भूगोल'-जैसे लेख आपने हिन्दी को दिये हैं। आपकी लेखन-शैली का एक उदाहरण देखिये—

"कलाकार की अनुभूति और अभिव्यक्ति मे सहानुभूति है अतः उसकी रचना मे रस होता है, रमणीयता होती है। इसीलिए कला रसात्मक है, रमणीय अर्थ-प्रतिपादक है। सस्कृत मे घृणा शब्द घिन और करुणा दोनो के अर्थ में आता है। इस दुहरे अर्थ मे ऊपर की समूची व्याख्या निहित है। एक ही घिनौना दृश्य एक के हृदय मे नफरत और दूसरे के हृदय मे वेदना उत्पन्न करता है।"

रायकृष्णदास जी कम लिखते हैं, यही उनका दोष है। यदि वे अपने शिल्प तथा चित्र-संग्रह के इतिहास और विकास पर ही एक ग्रन्थ लिखें तो भारतीय कला साहित्य को उनकी बड़ी देन होगी।

२०. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

'निरालाजी की निबन्ध-कला' पर मेरा १६४७ मे 'निराला-अभिनन्दन-ग्रन्थ' के लिए लिखा विस्तृत निबन्ध बिहार की पत्रिका 'राका' में प्रकाशित हो चुका है। 'निराला' जी के निबन्ध 'प्रबन्ध-पद्म दो भाग' तथा 'चाबुक' आदि फुटकर संग्रहो में प्रकाशित हैं। निरालाजी का उद्दाम-उच्छृङ्खल व्यक्तित्व उनके निबन्धों में भी स्पष्ट है, विशेषतः जहाँ वे खम ठोककर लडने पर तुल गए हैं—जैसे 'महात्माजी' और 'नेहरू से एक भेंट' मे, या मेरे गीत और मेरी कला' मे, या 'पन्त और पल्लव' में,या 'कला के विरह मे जोशी-बन्धु' में। 'निराला' जी का भाव-कोमल, मानव-करुणा-संव्याप्त व्यक्तित्व भी उनके निबन्धों में निखर उठा है और 'भारतीय काव्य-दृष्टि' या 'नन्ददुलारे वाजपेयी' या 'रवीन्द्रनाथ का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव' आदि निबन्धों में वह उदार भावोदात्त, पर दृढ़ व्यक्तित्व स्पष्ट है।

उनकी भाषा-शैली पर बंगला का प्रभाव साफ़ झलकता है, शब्दों के चुनाव में, वाक्य-विन्यास और विशेषणों के प्रयोग में भी। वेदान्त की बंगला-पत्रिका के सम्पादक के नाते निरालाजी ने यौवन के बहुत वर्ष बिताये हैं। वह अकाल संन्यास उनकी आत्मा मे रमा है। बात वे मौलिक करते हैं, लिखना भी अनूठापन लिये होता है। वक्रोक्ति के इस आग्रह मे कहीं-कहीं मुहावरा टूट जाता है, उसका हिन्दीपन छुट जाता है। संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेज़ी के उद्भट विद्वान् होने के नाते निरालाजी के साहित्यिक निबन्धों मे इन भाषाओं के काव्य का गहरा अध्ययन छलक उठता है। कहीं-कहीं सूत्र-बद्ध लिखने की शैली का आग्रह वे दुराग्रह की सीमा तक ले जाते है और परिणाम होता है 'साहित्यिक सन्निपात'-'जैसी रचनाएँ। परन्तु उस वर्तमान-धर्म वाली रचना की टीका में निराला जी ने अपने भाषा-विज्ञान, समाज-शास्त्र, संस्कृत-साहित्य-शास्त्र आदि के अध्ययन का खासा परिचय दिया है।

'निराला' जी ढोंग, दम्भ, बनावट, झूठी विद्वत्ता के बहुत खिलाफ़ हैं। वही विद्रोही स्वर बार-बार उनके निबन्धो में फूट पडा है, जैसे 'फैज़ाबाद साहित्य-सम्मेलन' की रिपोर्ट में। निबन्धकार निराला पर एक 'साधना' में सिद्धिनाथ तिवारी ने एक बहुत अच्छा निबन्ध लिखा था। उसका एक अंश यहाँ दे रहा हूँ जिसमें उनकी शैली के विषय मे विशद चर्चा मिलेगी, साथ ही 'निराला' जी के कई उद्धरण भी—

"निराला के निबन्ध एक उच्चकोटि के कलाकार द्वारा लिखे गए हैं— वह जो कवि का हृदय रखता है, वह जो आलोचक की बुद्धि रखता है

वह जीवन का द्रष्टा है, साहित्य का स्रष्टा भी है। हिन्दी का वह पूर्ण हिमायती है, फिर भी भाषा की गत्यात्मक सत्ता को स्वीकार करते हुए प्रचलित उर्दू शब्दो से भी विरक्ति नही रखता। निराला हिन्दुस्थानी भाषा के समर्थक नही। उनके अनुसार 'जबान जब अपने भावो के व्यक्तीकरण में समर्थ-से-समर्थ होती चलती है, तब वह साधारण-से साधारण हो या नही उच्च-से-उच्च जरूरत होती है। भाषाजन्य बहुत-सी कठिनाइयाँ सामने आती है जो हिन्दुस्तानी जबान को मद्दे-नजर रखते हुए दूर नही की जा सकती। ' ' आप अधिकाश जनों को खुश करने के लिए हिन्दुस्तानी जुबान का प्रचार करें। यह और बात है, लेकिन भाषागत और भावगत चारुता के उदाहरण उपस्थित करते हुए उनका हिन्दुस्तानी रूप कैसा होगा, यह आपसे पूछा जाय, तो क्या आप बता सकेंगे ?' निरालाजी चलती-फिरती हिन्दी के हिमायती है — वह हिन्दी, जिसे अधिक-से-अधिक लोग समझ सके। इनके वाक्य आवश्यकतानुसार छोटे-बडे मिलते है। वाक्य-विन्यास मे कही-कही बङ्गला का प्रभाव दिखाई पडता है।

बाहरी भाषाओ के शब्दो से हमारे कवि को आपत्ति नही। हॉ, उनसे हिन्दी की मूल विशेषताएँ नष्ट नही होती हो। उर्दू के चलते शब्दो का इन्होंने धडल्ले से प्रयोग किया है। 'नेहरूजी से दो बातें' शीर्षक निबन्ध में इनकी उर्दू-शैली का मुलाहिजा फरमाइए—

'जनता की जबान जो आज जनता की जबान कहलाती है, वह हजार वर्ष पहले जनता की जुबान न थी। फिर हजार साल बाद भी शायद न रहेगी। जो भाषा एक वक्त तमाम देश की जुबान थी तमाम देश के लोग उस भाषा मे बाते नहीं करते थे। आज भी प्रान्त-प्रान्त, यहॉ तक की जिले-जिले के हिन्दी-भाषा-भाषी की जबान भी जुदा-जुदा है। और कोई नई जबान तैयार की जायगी और उसके डंके पर चोटे पडती रहेगी तो खुद-ब-खुद इस तैयार जबान को धक्का पहुँचेगा।"

लेकिन गम्भीर विषय की आलोचना करते समय भाषा मे बाहरी शब्दों की एकदम न्यूनता हो जाती है—शैली सस्कृतमयी होने लगती है। पर भाषा की चुलबुलाहट हमें सभी निबन्धो में मिलती रहती है। भाव उछलते है तो शब्द भी उछल पडते है, वे ठिटके कि शब्द भी शिथिल हो गए। आलोचनात्मक निबन्धो की शैली फुदकती हुई चिडिया के डगो की तरह ही है—यहॉ देखा, वहॉ देखा फिर कही नही। और हृदय मे एक शाश्वत मधुरिमा अनजाने भर गई। चण्डीदास के 'यमुना जाइया श्यामेर देखिया, घरे आइलो विनोदिनी'

कविता की सरसता में ऊब-डूब होकर कवि बोल उठता है—"भावुक कवि राधिका के पूर्ण राग मे भावुकता को ही परिस्फुर कर रहा है। वह सौन्दर्य नही देख रहा है। जिस तरह उसके हृदय मे आवेश है, उसी तरह राधिका के हृदय मे। भाषा अत्यन्त ललित, अत्यन्त मधुर, हृदय को पार कर जाने वाली, सौन्दर्य की एक बहुत ही बारीक रेखा ही रही है। सौन्दर्य की छटा जैसे चौथ के चॉद की मीठी चॉदनी, न बहुत उज्ज्वल न बहुत ऐश्वर्य वाली; किन्तु आकर्षक हद से ज्यादा, जैसे १३ साल की मुकुलित बालिका—न परिपक्व ज्ञान वाली, न विचारो की शिशु।"

सस्कृत शब्द-प्रधान शैली मे निरालाजी को काफी सफलता नही मिली, भाव और भाषा की स्वाभाविक गति का वहॉ एकदम अभाव रहता है। परिश्रम से लिखी गई वह भाषा थोड़ी चकमक तो अवश्य प्रस्तुत करती है, लेकिन गति कुण्ठित हो जाने के कारण स्वाभाविक सहज बोधगम्यता की पहुँच से दूर जा पडती है। 'नाटक-समस्या' नामक निबन्ध की आरम्भिक पंक्ति की भाषा देखिए सिर्फ एक पक्ति का ही उदाहरण दिया जाता है—

"आकाश की नील नीलम ताराओ से ढँकी छत, शुभ्र चन्द्र और सूर्य का शीतोष्ण शुचितर रश्मि-पात, नीचे विश्व का विस्तृत रंगमंच, रंगीन सहस्रो दृश्य, शैल-शिखरो, समुद्र-रश्मियो, अरण्यशीर्षों पर छाया-लोक, पात करते प्रतिपल बदलते हुए, दिन और रात, धूप और छॉह, पक्ष और ऋतुओ के उठते गिरते हुए बहुरग पर्दे, क्षण-क्षण विश्व पर अपार ऐन्द्रजालिक शक्ति परियो-सी पंख खोलकर कलियो मे खिलती, केशर-परागो से युक्त प्रकाश मे उडती, रँगे कपडे बदलती, दिशाओ के आपत दृगो मे हँसती, झरनो मे गाती, पुनः अज्ञात तम मे अन्तर्ध्यान होकर तादात्म्य प्राप्त करती हुई, हास्य और रोदन, वियोग और मिलन; मौन तथा वीक्षण के नवरसाश्रित मधुर और भीषण कलरवोद्गारो से जीव-जन्तु स्वाभाविक अभिनय करते हुए ईश्वरीय यथार्थ नाटक है—एक ही सर की सरस सृष्टि सरस्वती।"

यह शैली निराला की सर्वव्यापी शैली नही है। 'काव्य मे रूप तथा अरूप' की शैली इनके निबन्धो का सफल प्रतिनिधित्व करती है। वहॉ यदि कोमलता है; स्निग्धता है, चुलबुलाहट है तो कटुता एवं कट्टरता भी कम नही। भावोन्मत्त आवेशो से भरे निबन्धो मे भाषा सरल, शैली फिसलती हुई रहती है। वाक्य छोटे-छोटे रहते है। तीव्र आवेग तीव्र गति से बहता जाता है। निरालाजी का बौद्धिक रूप भी कमजोर नही मारता, पर उसके साथ जो कवि चिपटा हुआ है, वह उसे अपनी भावुकता से रोके-थामे रहता है। पण्डित

माखनलालजी के सम्बन्ध मे निरालाजी द्वारा व्यक्त पंक्तियो को हम इस प्रसग मे उनके सम्बन्ध मे भी स्वीकार कर सकते हैं—

"कहीं-कहीं उनकी लपेट अच्छी लगती है। अगर कोई कलाजङ्ग बॉधकर ही छोड दे तो उसे पूरा दॉव नही कहते। चलाना पडता है। चलने पर भी देखना पडता है, कैसा चला, जोर से गया या सचमुच पूरे घाट उतरा। किसी बात के कहने में यही सिद्धि कला की सिद्धि होती है।"

निराला मे कहानीकार, कवि तथा निबन्धकार के तत्त्व इतने घुले-मिले हैं कि इनमें से किसी को कही भी अलग कर देना कठिन मालूम पडता है। निबन्धो मे कवि के साथ-साथ कहानीकार भी अपने निखरे रूप मे प्रकट दीखता है। लेख के आरम्भ मे या अन्त मे—एक मधुर उद्गम या मधुर लय देने के लिए—निराला ने छोटी कहानियो का प्रयोग किया है। 'चरखा' तथा 'गांधी से बातचीत' के अन्त मे, 'नेहरूजी से दो बातें' के आरम्भ मे तथा 'कला के विरह मे जोशी बधु' के आदि मे कथानक शैली का प्रयोग मिलता है। 'सामाजिक पराधीनता' शीर्षक निबन्ध का अन्त भी एक कटु सत्य की व्यंग्यपूर्ण कहानी से होता है। इस प्रणाली से लेख मे रोचकता की वृद्धि होती है।"

२१. शान्तिप्रिय द्विवेदी

शान्तिप्रिय द्विवेदी सहृदय आलोचक, सौन्दर्य पिपासु, भावुक निबन्धकार हैं। आपकी 'हिन्दी के निर्माता,' 'सामयिकी', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'कवि और काव्य' आदि पुस्तको मे तथा पन्तजी पर लिखे 'ज्योति-विहग' नामक विस्तृत ग्रन्थ मे उनकी भावोच्छ्वसित शैली के दर्शन हो ही जाते है। लगता है आलोचना न लिखते हुए मानो ये गद्य-काव्य लिख रहे हों। पर इधर 'पथचिह्न' और 'परिव्राजक की प्रजा' नामक जो दो आत्म-कथात्मक संस्मरण-प्रधान पुस्तकें आपने लिखी हैं उनमें उनकी शैली की सारी विशेषताएँ दर्शित होती हैं। उनकी शैली के उदाहरण 'पथ चिह्न' की भूमिका 'पूर्वाभास' में स्वर्गीय आचार्य केशवप्रसाद मिश्र ने बड़ी योग्यता के साथ उद्धृत किये हैं और उन पर अपना भाष्य भी किया है—

"शान्तिप्रिय ने अपने समस्त जीवन की बीज-कथा 'पथचिह्न' मे यो कही है–हम दो थे, भाई और बहन। बहन ने अपनी 'आहुति' दे डाली, मै ही अपने 'अभिशापो की परिक्रमा' करता रह गया हूँ। क्या करूँ! अन्त-र्दृष्टि पिता की तटस्थता का दाय पाकर भी संसार का 'पर्यवेक्षण' करता हूँ, बिना किये कैसे रहा जाय? अमेरिका कहता है—गॉड इज ग्रेट, बट् डॉलर

इज ऑलमाइटी, (ईश्वर बडा है, लेकिन सिक्का सर्वशक्तिमान् है) भला ऐसी दुर्मति का क्या प्रतिकार करूँ ? इसी अर्थ-पूजा ने तो इतने अनर्थ मचा रखे हैं—

"वर्तमान आर्थिक माध्यम मे प्रत्येक वर्ग वैश्य और प्रत्येक कर्म वेश्या-व्यापार बन गया है।"[१]

इसलिए हे "साहित्य-सङ्गीत-कला के अधीश्वरो ! देखो, आज दिशा-दिशा मे ज्वाला धधक रही है, तुम्हारी सृष्टि का नन्दन-वन भस्मसात् हो रहा है। इस युग-व्यापी दावाग्नि से विकल होकर खग, मृग, मधुप, व्याघ्र : कल-कोमल कराल वन्यजीव ही नही, बल्कि पुच्छ-विषाण-रहित मानव तनुधारी द्विपद पशु भी दिग्भ्रमित हो रहे है, सब आपस मे एक-दूसरे को दलते-कुचलते, क्रन्दन-कोलाहल करते इधर-उधर अव्यवस्थित गति से आश्रय की खोज में दौड़ रहे है।

तुम एक कण्ठ, एकस्वर होकर कहो—प्राणित्व का आश्रय प्राणियो के भीतर है। मनुष्य अपने इस 'अन्तःसंस्थान' को भूलकर पशुओ की तरह लोभवश बाहर भटक रहा है। उसके लोभ की ही हिंस्र दृष्टि ज्वाला बनकर आज सारे अग-जग को जला रही है।"[२]

प्रवृत्ति से ब्रह्मनिष्ठ और स्वभाव से निस्पृह 'दुर्बली महाराज' इसकी प्रतीक्षा न करते कि कोई उनका आवाहन करे तो वे उपस्थित हो। उनका मन जिधर उन्मुख होता शरीर भी उधर ही जाता। किसी के यहाँ पहुँचने पर अभ्युत्थान या अभिवादन के प्रति निर्मम वे धरती या धवलासन जहाँ चाहते वही यथेष्ट विराज जाते। अपरोक्ष अनुभूति के कुछ रहस्यमय सूत्र कहते और बिना अनुज्ञा लिये ही वहाँ से चल देते। उनकी इस दोटप्पी प्रक्रिया से बुध तो अवश्य लाभ उठाते, पर अबुध पागलपन ही समझते। त्रिसन्ध्य अदैन्य का प्रार्थी मेरा सुपरिचित और श्रद्धास्पद यह ब्राह्मण दूर्वा-दल खाकर रह जाता, पर किसी के सामने दीन बनकर याचना न करता।

इन्ही ब्राह्मण-देवता के सुपुत्र है—पण्डित शान्तिप्रिय द्विवेदी, हिन्दी के सुलेखको मे परिगणित। शान्तिप्रिय की विद्या-बुद्धि केवल हिन्दी के क्षेत्र मे ही उपजी, पनपी और बढी है। हिन्दी मे भी अब अच्छा वाङ्मय प्रस्तुत हो गया है। केवल हिन्दी-साहित्य का कोविद भी निष्णात निर्णय दे सकता है। फिर शान्तिप्रिय मे अपनी नैसर्गिक प्रतिभा तो है ही।

१. पृ० ५७।

२. पृ० ८८।

व्रतवती बाल-विधवा बहन के सकरुण और निर्भय अनुशासन मे पनपे शान्तिप्रिय मे मनस्विता है, पैतृक स्वच्छन्दता और विचारशीलता भी। इनका निसर्ग तो सोलहो आने भारतीय है ही, पर सस्कार तरल और सर्वतोमुख होकर भी तटस्थ है, आत्मसंस्थ है।

मुझे सन्तोष है कि 'पथचिह्न' मे यह सर्वतोमुखता बहुत-कुछ संयत होकर एकमुख हो गई है। संयम की मूर्ति और भारतीयता की प्रतिकृति बहन के 'स्मृति-चिन्तन' ने ही तो शान्तिप्रिय से संस्कृति और कला की ऐसी मञ्जुल पुस्तक लिखवाई। इस पुस्तक मे भावुक मन और तत्परबुद्धि के समागम का मधुर परिपाक है। इसका क्रिया-कल्प (रचना-प्रकार) नवीन और अत्यन्त रुचिर है। इसमे कृतिकार के निर्माण-संकल्प का क्रमिक विकास और उसका रूप-विन्यास अत्यन्त मनोहर और हृदयङ्गम हुआ है। इसकी शैली सम्पन्न, अनुरूप, भावप्रवण तथा व्यन्जक है। पृष्ठ-पृष्ठ पर ये विशेषताएँ लक्षित होती है।''

शान्तिप्रिय की सबसे बडी विशेषता उनकी अदम्य जीवट और 'अन्तः-प्रज्ञा' है। वे जन्म से 'अभाव का आसव' पीते रहे है। न तो कहीं नियमित रूप से उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई, न किसी व्यवसाय मे वे टिककर रहे। उसके बाद भी जिस संवेदनाशील हृदय से उन्होंने जीवन और जगत् की घटनाओं को ग्रहण किया है वह देखते ही बनता है। उनके निबन्धो में एक निरन्तर ताज़गी, सरसता, सूक्तिमयता, सुन्दर शब्द-चयन की सुष्ठु सुरुचि और सजाकर रखने का अपना विशेष ढंग दिखाई देता है।

शान्तिप्रिय जी के साथ हमारा सन् १९३४ का परिचय है। 'भारत' साप्ताहिक, 'कमला', 'वीणा' आदि पत्रिकाओ मे मैंने उनके कोचने पर बहुत लिखा है। 'वीणा', के 'बापू-बा', 'रोमारोलाँ', 'कला अंक' की सारी सामग्री अनुवाद-चित्र इत्यादि मेरे ही बनाये थे।

२२. श्रीराम शर्मा

श्रीराम शर्मा मूलतः रेखाचित्रकार है। 'बोलती प्रतिमा' नाम के उनके स्केच संग्रह की भूमिका मे पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनकी शैली के बारे मे कहा है—''श्रीराम शर्मा पं० पद्मसिंह शर्मा के उत्तराधिकारी है। जिस समय 'विशाल भारत' में श्रीराम शर्मा के शिकार-सम्बन्धी स्केच निकल रहे थे, उस समय पूज्य पं० पद्मसिंह शर्मा ने लिखा था—'श्रीराम जी तो उत्तरोत्तर ग़ज़ब ढा रहे है। बन्दूक से बढ़कर इनकी लेखनी का निशाना बैठता है, पढने

वाला तड़पकर रह जाता है। नज़र से बचाने के लिए इनके डंड पर भैरवजी का गंडा बाँध दीजिये।' पद्मसिंह शर्मा जी ने अनेक बार श्रीराम जी की शैली को 'सजीव', उनके भाव-विश्लेषण को 'मनोविज्ञान-सम्मत' और भाषा को 'विषय के अनुरूप' बतलाया था।"

हमे वह दिन अभी भी याद है जब सन् १९३७ में इक्के पर चढ़कर मैं वात्स्यायन जी के साथ (तब वे आगरे में 'सैनिक' के सम्पादक थे) बनारसीदास चतुर्वेदी जी के साथ फीरोज़ाबाद से शर्माजी के गाँव किरथरा मे गया था और उनकी खेती के पपीते खाये थे। और बन्दरों के शिकार के किस्से सुने थे। शर्माजी ने अपनी मूल प्रकृति छोडकर बाद मे गाय की नस्ल और राजनीति आदि पर लिखना शुरू करके अपने साथ अन्याय तो किया ही, हिन्दी के साथ भी अन्याय किया। फिर भी रेखाचित्रकार श्रीराम शर्मा की 'बोलती प्रतिमा' हिन्दी को एक गज़ब की देन है। उसकी भूमिका 'चित्रण' बनारसीदास॰ चतुर्वेदी ने लिखी है। उसका अंश इसलिए दे रहा हूँ कि शर्माजी की शैली का, उसके गुण-दोषों का उसमे सम्यग् दर्शन मिल जायगा—

"श्रीरामजी की प्रभावशाली लेखन-शैली में टिहरी-गढ़वाल के वन्य का जितना हाथ है, उतना ही जमनाजी की आस-पास की भूमि का—खारों का—है, और अपने शब्द-भण्डार के लिए वे जितने हिन्दी-उर्दू-लेखकों के ऋणी हैं, उतने ही चन्दा, गोविन्दा तथा पीताम्बर के भी है। वन्य प्रदेशों के भ्रमण ने श्रीरामजी को प्राचीन काल के आश्रमो का क़ायल बना दिया है, और वे इस बात को भली भाँति समझ गए हैं कि भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत कण्व और विश्वामित्र के आश्रमों में ही था। एक जगह उन्होंने लिखा था—

> "पडाव से पश्चिम की ओर जाने मे कोई मगर न मिला। इतने तडके वसन्त ऋतु मे मगर निकलते ही नहीं; पर मुझे तो शिकार के अतिरिक्त सैर और प्रकृति-दर्शन का शौक़ था। हमारे पूर्वज वन-जीवन-सेवन को जीवन और शिक्षा का मुख्य अंग समझते थे। राजा दिलीप की गोरक्षा में पुत्र की लालसा तो थी ही, पर साथ ही, लाभ मैं, उन्होने जीवन के मूल मन्त्र को—सादे जीवन के रहस्य को—सीखा, और उस मन्त्र को जब उनके वंशजों ने भुलाया, तभी उनका पतन हुआ। कृष्ण का गाय चराना और ईसा तथा मुहम्मद का भेड-बकरी चराना गहरे मानी रखता है। मुझ-जैसे क्षुद्र व्यक्ति के लिए भी वन-जीवन बड़ा लाभप्रद है। मैंने मनुष्यो के सामाजिक जीवन की जड़े पशु-पक्षी-जीवन मे पाई है। वास्तविक जंगली व्यक्ति का मैं तो क़ायल हूँ। मैं इस बात को मानता हूँ कि केवल षड्दर्शन से मोहन के दर्शन नहीं होते। मैं तो

वर्ड्सवर्थ की इस बात का क़ायल हूँ कि—

'One impulse from vernal wood,
May teach you more of man,
Of moral evil and of good,
Than all the sages can'

पर चाहिए आँख वाला। मैं भी कोई आँख वाला नहीं; पर वह अन्धा हूँ, जिसको झाँई मारती है। पता नही, आगे और खुलती है, या बन्द होती हैं।"

निम्नलिखित वाक्यो की सजीवता को देखिए—

(क) "गगा की सखी-सहेलियो मे—सहायक नदियो मैं—यो एक-से-एक बढ़कर और मदमाती हैं। चढने पर—भरी जवानी—बरसात मे आनन्द-विभोर—उल्लास, नख-शिख-सौन्दर्य, आकर्षक और गजब ढाने वाली चंचलता की कौन प्रशसा करे ? यमुना की व्रज-केलियाँ, सरयू की अठखेलियाँ सरस्वती की अगोचरता और गटकारी, सोनभद्र का फहराता हुआ सुनहरा चीर देखते ही बनता है, पर रामगगा का भृकुटि-विलास और भाव-भगी बेजोड ही है। गगा महारानी की किसी भी यौवन-मदमाती सखी का यह ताव नही कि रिझाने की किसी भी कला मे रामगगा को हरा सके। गात की मझोली, भाव की गम्भीर रामगंगा की छटा को बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद और हरदोई के जिले मे देखिए। हरित तृणो की झालरदार साडी पहने, उभरे गात से, फुदकती और मचलती, मुड-मुडकर देखती और यौवन-बाढ मे अनेक मस्त वृक्षो को बहाती रामगगा एक विचित्र ही नदी है। अनेक मकानो को अपने गर्भ मे रखती—भोजन-सा करती—मीलो तक खेतो को जलमग्न करती, मानवी नई-नवेलियो से होड लगाकर वह गंगा से मिलने बढ़ती है। किसी-किसी गाँव के पास तो उसे पीहर की याद आती है, और लौट-लौटकर चक्कर लगाकर घायल साँप की भाँति पलटा खाकर—कुछ ढूँढती-सी वह अपना मार्ग बनाती और गाँव को प्रायद्वीप बना डालती है।"

(ख) "थके-माँदे शरीर मे नीद का नशा आ जाने से रात ढलते फिर आँख खुलने की आशा न थी और पीसने का ढेर रखा था। तोता घास भी न छील पाया था और प्रातःकाल गहरी ओस मे घास छीलने का सवाल ही न था, इसलिए आधा काम—पिसाई करना ही था, इसलिए चमेली ने अपनी चक्की चलाई। दो टोकनो मे गेहूँ भरे रखे थे। चक्की मे कौर डालकर

उसने पीसना प्रारम्भ किया। मनोव्यथा की उपेक्षा करने के लिए डंडे को दाएँ और बाएँ हाथ से बारी-बारी से पकड़कर चक्की चलाते हुए उसने गाया—

'जंजारी जियरा
धन्धौ करत जनम योंई गयो।'

ऊपर आकाश का पाट अनेक नक्षत्रों से जटित ससार की चक्की अविचलित गति से चला रहा था। कटौरा की दीपावली के दीये अभी बुझे नहीं थे। लोगों ने खील-बताशे अभी चाब नहीं पाए थे।"

(ग) "जॉनी वाकर की बोतल खुली—धच्च; और गले के नीचे वह पेय उतरा—गटर-गटर। आँखों में सुरूर, चेहरों पर नूर और सामने सब साज-सामान। बस, आज्ञा हुई कि मुजरा जमे। पहले नाच का हुक्म हुआ और परमलू नाच का। उस्तादजी ने पलथी मारे बैठकर हाथ से गति करते हुए बोल कहे—'तक क्त तक दिग तक दिग गदि कत जगत कूक तक तक दिगति जय तरा तराग तग घिलाग धिधि धिन झझन नाड धिरा झनन डान थू कतत कतत कत गिदिन्नाड ता धा।' ता धा की समाप्ति पर चौपाल की धूमिल ज्योति में बिजली-सी चमकी और विद्युत्-गति से नर्तकी ने न मालूम कितने चक्कर काटे और एकदम ऐसे रुकी कि उसकी भाव-भंगी और रुकने से ता धा का ब्रेक लग गया। 'वाह-वाह', 'ख़ूब-ख़ूब' की ध्वनि और सिर झुकाकर प्रशंसा-स्वीकृति के उपरान्त गाने का नम्बर आया। तबला ठनका 'धा धी धीना नाधी धीना, नातीतीना, नाधी धीना', और हारमोनियम पर उँगलियाँ चलीं स ग म प नि ध नि स स नि ध प म ग रे स और अधखुले नेत्रों, गोरी उँगलियों से लट को सँभालकर तिरछी चितवन और हाथ को आगे बढ़ाकर उसने खम्माच राग में गाया—*"राजा जानी मारो ना नयनवा के तीर।"**

२३. डाक्टर रघुबीरसिंह

सीतामऊ की रियासत के राजकुमार, मालवा के इतिहास के खोजी विद्वान् डॉक्टर रघुबीरसिंह सम्प्रति मध्य भारत से भारतीय संसद् के निर्वाचित सदस्य हैं। आपके गद्य-काव्यों के दो संग्रह 'शेष स्मृतियाँ' और 'बिखरे चित्र' नाम से प्रकाशित हुए हैं। डॉक्टर रघुबीरसिंह का 'ताजमहल'-विषयक उनका गद्य-काव्य बहुत उद्धृत हुआ है। ये भी वियोगी हरि, रायकृष्णदास आदि की शैली के भावोच्छ्वसित गद्य लिखने वाले कवि-हृदय निबन्ध-लेखक हैं।

इतिहास के अध्येता होने के कारण उनकी कल्पना पर अतीत का

गहरा रंग है। कही-कहीं तो वे पुनरुत्थानवादी-जैसे लगते है। कला के पारखी की मर्मज्ञ सौन्दर्य-ग्राही दृष्टि से उन्होने अनुभूतियों के कणों को चुना है और उन्हे सुन्दर भाषा की हेममुद्रिका मे जड़कर रख दिया है। इसी कारण उनकी रचनाएँ यद्यपि हैं तो आधुनिक काल की, परन्तु लगती हैं उन्नीसवी सदी की-सी। भावुकताभरी कल्पना का लक्षण यह है कि वह यथार्थ की ज़मीन छोडकर ऊपर विचारो के अकाश-वातास मे अधिक मँडराती है। वही बात डॉक्टर रघुबीरसिह की शैली में है। विस्मयबोधक तथा प्रश्नबोधक विराम-चिह्नो का विशेष उपयोग इसी बात का प्रमाण है कि वे अपनी भावनाओं को संयमित रूप से व्यक्त नहीं कर पाते।

विषयो की विविधता का भी अभाव है। उनका मनोलोक रूढ विषयों के प्रदक्षिणा-पथ मे ही मॅडराता है। उनके मनोलोक मे इतिहास का देवता प्रतिष्ठित है। और उसी गर्भग्रह मे प्रार्थनाओं की अनुगूॅज जैसे सुनाई देती है। विगत का इतना ध्यान हिन्दी के अन्य किसी निबन्धकार ने शायद ही रखा हो। परन्तु यह लिखने का ढग पुराना पड चुका है।

उनके एक लम्बे गद्य-काव्य के इस अंश से उनके विचारों और शैली का पता लग सकता है—

"आओ नाथ ! बहुत दिन से उस दिन को देख रहे हैं। पुनः कब वृन्दावन वाली मुरली की वह सुमधुर ध्वनि कानो मे पड़ेगी ? फिर कब आपकी गीता का सन्देश हमे कर्तव्य की दिशा की ओर बढायेगा ? हम आशा लगाए है कि तुम पुन. आओगे, पुनः हमे गीता का सन्देश सुनाओगे, पुनः जीवन-संग्राम मे विजय पाने का सन्मार्ग दिखाओगे।

बहुत दिनो से आशा लगी है। क्या हमे पुनः गीता का सन्देश न सुनाओगे ?"

२४. जैनेन्द्रकुमार

'जैनेन्द्र के विचार' मैने सन् १९३७ मे सम्पादित करके टिप्पणियो सहित प्रकाशित किये। उसकी भूमिका में निबन्धकार जैनेन्द्र पर विशेष रूप से लिखा गया है। बाद मे हाल में 'मेरे साहित्य का श्रेय और प्रेय', 'मन्थन', 'सोच विचार' और 'ये और वे' नाम से जैनेन्द्र-साहित्य के अन्तर्गत जैनेन्द्र-कुमार के और भी निबन्ध मैंने संग्रहाकार संकलित और सम्पादित किये। जैनेन्द्रकुमार हिन्दी में अपनी एक विशिष्ट शैली लेकर आये, जिस पर गांधी जी की मूल गुजराती की सूत्रबद्ध, मर्मस्पर्शी, सब प्रकार के अनावश्यक का

परित्याग करने वाली, मूल पर प्रहार करने वाली शैली का गहरा प्रभाव है। जैनेन्द्र जी हिन्दी में कहानीकार और उपन्यासकार के नाते आये। उनके निबन्धों में भी उनका कहानीकार घुला-मिला हुआ है। 'राम-कथा', 'कहानी नहीं'-जैसे निबन्धो मे यह कहना कठिन है कि कहानीकार कहाँ तक है और निबन्धकार कहाँ तक।

जैनेन्द्र जी की शैली के गुण है उनकी सरलता, सरसता, विषयों को मूल रूप मे पकडने की तार्किक गम्भीरता, मानवी सहानुभूति से ओत-प्रोत उदारता आदि। उनके दोषो के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि इधर अपनी शैली के विषय मे कुछ अधिक सचेष्ट और सतर्क हो जाने से उनमे एक अतिरिक्त दार्शनिकता आ गई है। अतः विषय-विवेचन उतना सर्वग्राही नहीं रह गया है। उसमे दार्शनिकता, उलझन, अधिक बढ़ गई है। परन्तु यह गौण बात है। भाषा के मामले मे जैनेन्द्र जी स्वयं चूँकि लिखते नहीं परन्तु लिखाते हैं, इसलिए एक प्रकार की सम्भाषण-सुलभ धारावाहिकता अवश्य है।

प्रेमचन्द के उत्तराधिकारी के रूप मे जैनेन्द्र ने 'हंस' के सम्पादक के नाते साहित्य-जगत् मे अधिक प्रवेश किया। पर प्रेमचन्द और उनके दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर था, इसलिए दोनो के मार्ग अलग-अलग हुए। लेखन-शैलियाँ भी भिन्न-भिन्न हो गईं। यथा—

"यहाँ एक प्रश्न याद आता है जो स्वर्गीय प्रेमचन्द से मैने किया था। पूछा कि बताइये, आपके सारे लिखने का मूल भाव क्या है? तो सुनते ही कहा—'धन की दुश्मनी।'

मैं अपने से वही पूछूँ तो उत्तर मिले, 'बुद्धि की दुश्मनी।'

जानता हूँ, प्रेमचन्द ने धन फेका नहीं, और मै बुद्धि को किसी मोल छोड नही सकता हूं। लेकिन मेरे अन्दर सबसे गहरी यह प्रतीति गड़ी है कि बुद्धि भरमाती है। अक्सर वह ऊपर मुँह करके श्रद्धा को खाती है। इन्द्रियो की तरह बुद्धि भी पदार्थ के लिए है। और पदार्थ-जगत् के साथ निबटना ही उसका क्षेत्र है। शेष में उसे पूरी तरह श्रद्धा के अकुश मे रहकर नीची आँख करके चलना होगा।"

२५. *सियारामशरण गुप्त*

जैनेन्द्रजी के साथ ही सियारामशरण गुप्त का नाम याद आना स्वाभाविक है। वैसे तो भारतेन्दु-काल से ही हम देख रहे हैं कि शायद मैथिलीशरण जी का एक-मात्र अपवाद छोड़कर, जिन्होंने शायद एक-दो ही निबन्ध लिखे हैं,

कोई भी ऐसा हिन्दी-कवि नहीं है जिसने गद्य में इस निबन्ध-प्रकार को न आजमाया हो। पंत-प्रसाद-निराला, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, 'अज्ञेय' आदि सभी कवियों ने काव्यालोचन-परक निबन्ध लिखे है, परन्तु जैसे मैने अपने एक निबन्ध ('हिन्दी के कवि आलोचक'[1]) में लिखा है वह आलोचना कमोबेश रूप में कविता समझने में सहायक हुई है। परन्तु व्यक्ति-निबन्ध को उसी रूप में किसी कवि ने अत्यन्त सफलता पूर्वक यदि अपनाया है तो श्री सियारामशरण गुप्त जी ने।

गुप्त जी की गांधीवादी प्रकृति की सादगी उनकी लेखनी में भी उतर आई है। 'झूठ सच' में हर चित्र के दूसरे पहलू को भी देखने की सहिष्णु अहिंसक वृत्ति, घोड़ाशाही आदि मे यन्त्र-संस्कृति का विरोध, कविचर्या आदि मे सूक्ष्म व्यंग और अन्य निबन्धो मे सच्चे मानो मे पाठक के साथ बतकही आदि का आनन्द हमे मिलता है। इस पुस्तक पर किये हुए रेडियो-समालोचन में 'अज्ञेय' ने इन निबन्धो की शैली की मीमांसा की है।[2] डॉ० नगेन्द्र द्वारा संपादित 'सियारामशरण' नामक निबन्ध-संग्रह में मैने उनकी कहानियों के बारे मे विस्तार से लिखते हुए बताया है कि सौन्दर्य के सच्चे परिज्ञान के लिए जो तटस्थता आवश्यक है वह सियारामशरण मे है। उनकी कहानियाँ, निबन्ध और रेखाचित्र जैसे एक ही कलम से बनाये गए चित्र हैं, उनके रंग भी एक-से है। वर्ण-संयोजना भी एक-सी ही है।

गम्भीर विचारक कवि के रूप में सियाराम जी जहाँ कही-कहीं रूखे और दुर्ज्ञेय-से हो जाते हैं, निबन्धो मे ऐसा कहीं भी नहीं होता। उनका निष्कपट व्यक्तित्व, सरल भाषा मे जैसे पाठको से वार्तालाप करता जाता है। वार्तालाप मे ही संस्मृतियाँ गुँथी हुई होती है और उन्हींमे से तत्त्व-चिन्तन का नवनीत सहज भाव से ऊपर तैरता हुआ आता है। हिन्दी की दो-तीन श्रेष्ठ निबन्ध-पुस्तको मे 'झूठ सच', 'अशोक के फूल', 'सोच-विचार' है। एक उदाहरण लीजिये—

> "तब दूसरा सुझाव मेरा यह है कि कवि के लिए स्त्री-जैसा कच-कलाप अनिवार्य हो। इस पर अपने पूर्णाधिकार से वंचित होकर स्त्रियाँ इस बात से रुठेगी नही। 'बढ़त देख निज गोत' की नीति से उनकी अँखियाँ सुखी ही होगी। इस बात मे पुरुष के लिए कुछ बाधा भी नही है। आशा है, वे उसे मान लेगे। सौदा पटाने के मिष अर्थात् इस प्रस्ताव मे कुछ काँट-छाँट

१. परिशिष्ट देखिये।

२. देखिये, 'त्रिशंकु', परिशिष्ट।

करने के लिए अपनी अँखियो के भी सुखी करने की बात उठाकर, यह आग्रह न करेंगे कि स्त्री कवि के लिए दाढी और मूँछ अनिवार्य हो। यह भद्दी और अनुचित माँग होगी। किसी की वाजिब माँग पर ही विचार किया जा सकता है।"

सियारामशरण जी गुप्त हिन्दी-गद्य मे एक नवीन प्रकार अनजाने मे ले आए, जो अब रूढ होता जा रहा है। व्यक्तिगत निबन्ध हिन्दी की अपनी विशेष सम्पदा है।

२६. *हजारीप्रसाद द्विवेदी*

हिन्दी के आधुनिक गद्य मे एक और श्रेष्ठ निबन्धकार है पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी। 'अशोक के फूल', 'हमारी साहित्यिक समस्याएँ', 'कल्पलता' उनके श्रेष्ठ निबन्ध-संग्रह है। मैने 'अशोक के फूल' से 'जब दिमाग खाली रहता है' का अनुवाद मराठी साहित्यिक मासिक 'अभिरुचि' मे किया था, जिसका स्वागत बहुत ही अच्छी तरह से किया गया। एक ओर हजारीप्रसाद जी का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक ज्ञान, 'जब नाखून बढते है' या 'ठाकुर की सौगात'-जैसे निबन्धो मे झलक उठता है, तो दूसरी ओर उनके प्रकृति-निरीक्षण के और अपने आस-पास के पेड-पौधे, पशु-पक्षी, फूल-फल में उनकी रुचि के निर्देशक कई सुन्दर निबन्ध, जैसे 'आम फिर बौरा गये', 'शिरीष के फूल' आदि मिलते है। सर्वत्र उनकी मानवतावादी प्रगमनशीला दृष्टि अवश्य मिलती है। कितनी प्रगल्भ और परिष्कृत, संस्कारवती और सहृदयतापूर्ण वह दृष्टि है! मध्ययुगीन साहित्य के आदान-प्रदान का चित्र जिस सुकुमारता से वह खींचते है, शव-साधना-जैसे विषय मे भी वे अपना वही दृष्टिकोण नहीं छोड़ते। उनके लिए भूत मृत नही है। वह जीवित है, और औरो के लिए भी वह उतना ही रोचक और सजीव वे बना देते हैं इसीमे उनकी विशेषता है।

शैली मे रवीन्द्रनाथ का प्रभाव स्पष्ट है। संस्कृत के प्राचीन साहित्य का अध्ययन भी झलकता है, परन्तु सहज भाव प्रधान है। अन्य संस्कृतज्ञ निबन्धकारो मे वह अतिरिक्त मात्रा में और कृत्रिम जान पड़ता है। उनके निबन्ध से एक उदाहरण देखिये—

> "अशोक का वृक्ष जितना भी मनोहर हो, जितना ही रहस्यमय हो, जितना भी अलकारमय हो, परन्तु है वह उस विशाल सामन्त-सभ्यता की परिष्कृत रुचि का प्रतीक, जो साधारण प्रजा के परिश्रमो पर पली थी, उसके रक्त के स-सार कणो को खाकर बडी हुई थी और लाखों-करोड़ो की उपेक्षा से

समृद्ध हुई थी। वे सामन्त उखड़ गए, साम्राज्य ढह गए और मदनोत्सव की धूम-धाम भी मिट गई। सन्तान-कामिनियों को गन्धर्वों से अधिक शक्तिशाली देवताओं का वरदान मिलने लगा—पीरों ने, भूत-भैरवों ने, काली-दुर्गा ने यक्षों की इज्जत घटा दी। दुनिया अपने रास्ते चली गई, अशोक पीछे छूट गया।[1]

२७. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

भदन्त आनन्द कौसल्यायन बौद्ध-भिक्षु और पर्यटक के नाते विख्यात है। आपने जातक की कथाओं का पालि से हिन्दी में ६ खण्डों में अनुवाद प्रकाशित किया है, जो सम्मेलन से प्रकाशित हो चुका है। उसकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका आपके अध्ययन और अध्यवसाय की परिचायिका है। इसके अलावा आपने इंगरसोल, आरवेल और अम्बेदकर की मूल अंग्रेजी पुस्तकों के अनुवाद भी हिन्दी में प्रस्तुत किये हैं। 'धम्मपद' का अनुवाद भी प्रसिद्ध है। इन गम्भीर ग्रन्थों के अलावा 'भिक्षु के पत्र' नाम से आपकी एक पुस्तक है। उसमें समय-समय पर विदेशों से लिखे पत्र संग्रहीत हैं। परन्तु यह सब रचनाएँ निबन्ध की कोटि में नहीं आतीं।

उनकी विशुद्ध निबन्ध की कोटि में आने वाली रचनाएँ 'जो मैं भूल न सका', 'जो मुझे लिखना पड़ा', 'रेल का 'टिकिट' आदि ग्रन्थों में हैं। ये निबन्ध भी कई प्रकार के हैं: कुछ प्रासंगिक संस्मरणात्मक रेखाचित्र हैं, तो कुछ निरी संस्मृतियाँ हैं। कुछ हास्य-व्यंग का पुट लिये हुए आत्म-व्यंग हैं, तो कुछ यात्रा के विवरण। जैसे राहुलजी से सम्बन्धित लेख संस्मरण की कोटि में आयेंगे तो 'वह मेरा नामराशि', 'ओम हवाक्युई' या 'भिक्षु उत्तम' संस्मृतियों की। बहुत-से निबन्धों में बौद्ध-दर्शन और बुद्ध भगवान्-सम्बन्धी आख्यायिकाओं और दृष्टान्तों के उद्धरण हैं। कई निबन्धों में विशुद्ध मानवीय करुणा के नितान्त रम्य दर्शन हो उठते हैं। 'बापू की प्रार्थना' आदि निबन्धों में कुशल व्यंगकार की और सात्विक सन्ताप की अभिव्यक्ति हुई है और कहीं-कहीं डायरी के पृष्ठों का-सा आनन्द है। उदाहरण के तौर पर 'रेल का टिकिट' ग्रन्थ का नौवाँ निबन्ध केवल आधे पृष्ठ का है। और वह यों है:

"इलाहाबाद रहता था तो उत्तर भारत के प्रसिद्ध हिन्दी प्रेस, ला जर्नल प्रेस में आना-जाना होता। कभी-कभी प्रेस के मैनेजर श्री कृष्णप्रसाद दर साहब के घर भी जा बैठता। उनका ड्राइंग-रूम एक अच्छा खासा सजा-

१. 'अशोक के फूल'।

सजाया ड्राइंग-रूम था। एक दिन डर साहब की अनुपस्थिति मे मैने देखा कि सजावट की कई चीजो के बीचो-बीच एक छोटी-सी जूती रखी है—पुरानी सूखी हुई। ध्यान से देखने पर उस पर रक्त के लाल निशान लगे हुए थे।

डर साहब बाहर से आए तो मैने पूछा—"यहाँ यह छोटी-सी जूती कैसी?"

बोले—"हम जलियाँ वाला बाग (अमृतसर) गए थे। वहाँ किसी छोटे बच्चे की यह रक्त लगी जूती मिली। हम इसे उठा लाये है। हमारे बच्चे कुछ बडे होगे तो उन्हे बतलाएँगे कि देखो अंग्रेजो ने जलियाँ वाला बाग मे तुम्हारे-जैसे छोटे बच्चो को भी मशीन-गन से भून दिया था।"

मैं सहम गया। उस अज्ञात नाम शहीद बालक की जूती मेरी आँखो के सामने नाच रही है। उसी जैसे शहीदो के खून की खाद मे ही जलियाँ-वाला बाग के देश मे आज यह भारतीय स्वतन्त्रता का फूल खिला है।

यह वह लता है जो बिना मान की रक्त की खाद के फलती-फूलती ही नही।"[१]

आनन्द कौसल्यायन की शैली मे तीखा और गहरा व्यंग, कशाघात करने वाला बुद्धिवाद और मन को छू लेने वाली अतलस्पर्शी भूत-दया एक साथ दिखाई देती है। निबन्धो के क्षेत्र मे हिन्दी को उनकी देन अपूर्व है। कही-कहीं वे अपने गुरु राहुल जी से भी अधिक बाज़ी मार ले गए है, जहाँ तक निधन्ध-कला का सम्बन्ध है।

१८. वासुदेवशरण अग्रवाल

डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल विख्यात संस्कृतज्ञ और पुरातत्त्वज्ञ है। साथ ही जनपद-संस्कृति के विषय मे आपने 'मधुकर', 'लोक वार्ता', 'ब्रज-भारती' आदि पत्रिकाओ मे बहुत लिखा है। आपके दो निबन्ध-संग्रह 'पृथ्वी-पुत्र' और 'माता भूमि' हैं। इन निबन्धो में गम्भीर विद्वान्, पाणिनी-कालीन भारत के अन्वेषक, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के विक्रम-विशेषांक के सम्पादक वासुदेवशरणजी के दर्शन होते है। उनके निबन्धो मे स्थान-स्थान पर वैदिक साहित्य से समुचित उद्धरण पाये जाते है। लोक-भाषा के साहित्य से भी उसी प्रकार के सुन्दर उद्धरण और शब्द मिलते है। उन ग्राम-शब्दो का तो विशेष रूप से उन्होने संकलन और संग्रह ही किया है। मुझे उनका कालिदास के 'मेघदूत' पर लिखा निबन्ध बहुत अच्छा लगा। और वैसा ही सुन्दर निबन्ध

१. 'उसका खून भी रग लाया है', 'रेल का टिकिट', पृष्ठ ४२।

'पृथ्वी पुत्र' मे जानपद-जीवन के पुनरुद्धार-सम्बन्धी योजनाओ का है। 'कला और सस्कृति' निबन्ध-संग्रह मे वासुदेवशरण अग्रवाल जी की शिल्प-स्थापत्य-संगीत-चित्र के सम्बन्ध में नवनवीन खोज-बीन के दर्शन होते है। उस विषय मे उनका अधिकार अन्यतम है। परन्तु आपके सब निबन्ध एक खोजी विद्वान् के निबन्ध है,उनमे जानकारी देने वाले का या उपदेष्टा का आसन अधिक दिखाई देता है। मित्र के साथ संलाप या सहकर्मा या सहधर्मा पाठक के साथ विश्रब्धालाप का-सा आनन्द उनके निबन्धो मे इसलिए नहीं आता कि वे भाव-प्रधान कम और विचार-प्रधान अधिक है। इतिहास या पुरातत्त्व की शोध का उनका दृष्टिकोण सर्वोपरि है। कहीं-कही सूक्ष्म परिहास की छटा भी दृष्टिगोचर होती है।

२६. बनारसीदास चतुर्वेदी

बनारसीदास चतुर्वेदी कई वर्षों तक 'विशाल भारत' के सम्पादक रह चुके है और उस सम्पादन-काल मे 'कस्मै देवाय हविषा विधेम !' 'साहित्यिक-सन्निपात', 'घासलेटी साहित्य' आदि अनेक नामी-बदनामी भरे आन्दोलन वे चला चुके है। साहित्यिक योजनाएँ उन्हे इतनी प्रिय है कि हमारे एक मित्र ने उन्हे 'योजना-विहारी' कह डाला था। वे संस्मरण-रेखाचित्र लिखने मे बहुत सिद्धहस्त है। उनके लिखे संस्मरणों के एक-दो संग्रह भी प्रकाशित हुए है।

बनारसीदासजी की निबन्ध-शैली की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट है : एक तो वे बहुत रोचक, मनोरंजक सस्मरण लिखते है। वे अपने ऊपर भी परिहास यथासमय, यथा प्रसंग कर लेते है। उनकी यह व्यंग-विनोद की आदत किसी को भी नहीं छोडती। उनकी यह ज़िन्दादिली, सबसे छेड करने की आदत ही उनके निबन्धों को सबसे अधिक सरसता और सप्राणता प्रदान करती है।

बनारसीदासजी की दूसरी विशेषता है अपनी रचनाओं में पत्रों के अंश, डायरी के पन्ने आदि उद्धृत करना। थोरो, इमर्सन, टाल्स्टाय आदि अपने प्रिय आदर्श चिन्तकों के वे उद्धरण देते जाते हैं और इस प्रकार से रचना को गम्भीरता की पीठिका भी प्रदान करने का यत्न करते हैं। बनारसीदासजी जब कविरत्न सत्यनारायण, गणेशशंकर विद्यार्थी, दीनबन्धु एण्ड्र्यूज़, गांधी जी, श्रीनिवास शास्त्री आदि के विषय मे लिखते समय बडी ही आत्मीयता से लिखते है और उनके लेखन मे एक वार्ताकार, एक जीवनीकार, आत्मचरित-लेखक और संस्मरण-लेखक के एक साथ दर्शन होते है। बनारसीदासजी

निबन्ध-लेखक से अधिक रेखाचित्रकार है। उनकी रचनाओं मे यही गुण अधिक है। वे पत्रकार के साथ-साथ जीवनी-लेखक उत्तम बन सकते है। परन्तु समय-समय पर उन्होने निबन्ध भी लिखे है, जिनमे बतकही के सब गुण विद्यमान है। बनारसीदासजी की ग्रामीणो के प्रति सहानुभूति उनके निबन्धो मे स्पष्टतः घोषित है।

बनारसीदास जी के निबन्धो मे सब दुनिया भर के दुख-दर्द का इलाज करने वाले वैद्यगिरी की जो एक लत है उसे छोड़ दे तो उनकी स्पष्ट सहानुभूति प्रगतिशील तत्त्वों के साथ है। वे प्रतिक्रिया (चाहे किसी रूप मे हो)-मात्र के विरोधी है। गांधीवाद के मानवतावादी तत्त्व को उन्होने ग्रहण किया, फिर भी जैसा कि 'अराजकवादी पैंबटेस्टा' आदि पुस्तिकाओं से स्पष्ट है, वे अराजकवाद के सैद्धान्तिक समर्थक है, परन्तु भाषा और साहित्य के मामले मे जरा भी स्वच्छन्दता दिखाई दे तो वे एकदम क्रुद्ध हो उठते है। यह परस्पर-विरोधी तत्त्व उनके निबन्धो मे भी स्पष्ट दिखाई देते है।

इनके निबन्धो मे साहित्य-गुण चाहे कम हो, परन्तु उनका ऐतिहासिक महत्त्व है।

३०. महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा (जन्म सन् १९०७) हिन्दी की विख्यात कवयित्री हैं। आपके 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' तथा 'दीपशिखा' कविता-संग्रह अपनी उच्च कोटि की रहस्यवादी गीत रचना के कारण और उसमे उनमे स्वयं अंकित सुन्दर चित्रों के कारण हिन्दी-साहित्य मे श्रेष्ठ सम्मान पा चुके है। आपने सन् १९३३ मे प्रयाग-विश्वविद्यालय से संस्कृत मे एम० ए० करने के पश्चात् 'चॉद' पत्रिका का सम्पादन भी किया था। सम्प्रति प्रयाग महिला विद्यापीठ की सचालिका और साहित्यकार-ससद् की प्रमुख कार्यकर्त्री हैं। हिन्दी-गद्य को आपने 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' नामक उच्च कोटि के संस्मरणात्मक निबन्ध और 'शृंखला की कड़ियॉ' नामक नारी-जीवन-विषयक विचार-परिप्लुत विवेचनात्मक निबन्ध दिये हैं। आपकी शैली मे आपके व्यक्तित्व की ही भॉति सरलता, सहजता और साथ ही गम्भीरता और उदार करुणाशीलता का समावेश है। एक उदाहरण देखिए—

> "नीली दीवार पर किस रंग के चित्र सुन्दर जान पडते हैं, हरे कुशन पर किस प्रकार के पक्षी अच्छे लगते हैं, सफेद पर्दे के कोनो मे किस बनावट के फूल-पत्ते खिलेंगे आदि के विषय मे चीनी उतनी ही जानकारी रखता था

जितनी किसी अच्छे कलाकार मे मिलेगी। रंग से उसका अति परिचय यह विश्वास उत्पन्न कर देता था कि वह आँखो पर पट्टी बाँध देने पर भी केवल स्पर्श से रंग पहचान लेगा।"

महादेवी जी के निबन्धों की विशेषता है उनकी भाव-विभोर गहरी चिन्तनशील प्रवृत्ति, जिसके कारण वे विवरण मे जाकर वर्णन बहुत चित्रोपम करती हैं। काव्यमयता उनके निबन्धो की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता है। वे भी रेखाचित्र और संस्मरण की सीमा-रेखा वाले निबन्ध ही लिखती हैं, फिर भी उनके कई संस्मरणात्मक चित्र जैसे 'महाप्राण निराला' (गंगाप्रसाद पाण्डेय) की भूमिका, और उनके कई भाषणात्मक निबन्ध बहुत सुन्दर बन पडे हैं। भगतिन, चीनी फेरी वाला और ऐसे ही चित्रो से भरे उनके निबन्धो की तुलना एक स्नैपशॉटो के अलबम से की जा सकती है। आप ही की शैली पर स्वर्गीय सुभद्राकुमारी चौहान ने भी कुछ रेखाचित्र लिखे थे, जो कि कहानी की ओर अधिक झुक गए।[1]

महादेवी वर्मा ने वैसे गम्भीर काव्यालोचनात्मक व्यक्तव्य भी अपने कविता संग्रहो की भूमिका के रूप में लिखे है, उनमे सूक्ति, प्रासादिकता, तत्त्व-चिन्तन और सन्दर्भ-सौन्दर्य का संश्लिष्ट आनन्द प्राप्त होता है।

३१. लक्ष्मीकान्त झा

'चलचित्र', 'रेखाचित्र' आदि दो-चार पुस्तको द्वारा ही श्री झा ने सिद्ध कर दिया कि हिन्दी में भी उर्दू के 'पतरस के मजामीन' की भाँति चुलबुला गद्य लिखने में वे पटु है। जीवन की दैनन्दिन घटनाओं में से कुछ चुनकर उन-पर 'अलफा आफ दि प्लाड' की भाँति टिप्पणी करने का नरम परिहासयुक्त प्रयत्न झा के निबन्धो मे है। यात्रा के साथी की तरह से ही निबन्धो का बड़ा उपयोग है—वे आपका मनोरंजन करते जाते है, साथ ही आपको हल्के-से गुदगुदा देते हैं। आप क्षण-भर के लिए अपने ही दोषो की ओर देखना शुरू करते है। इस दोष-दिग्दर्शन में चिकौटी काटने का इरादा नहीं है, परन्तु मानवीय भाव-मात्र की कमज़ोरी की ओर देखने का एक सहज सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण है।

झा की भाषा-शैली मुहावरो से मण्डित है। उर्दू की चुहल से वह अपरिचित नहीं है। साथ ही पूरबी की भी पुट मिलती है। सबसे बडी खूबी है संक्षेप में एक सशक्त चित्र-निर्माण करने की क्षमता। उनकी निरीक्षण-शक्ति

१. देखिये, 'सीधे-सादे चित्र'।

बहुत मार्मिक है और विषयो का चुनाव भी इतना अकृत्रिम है। इनके निबन्ध पढते समय वह चेस्टरटन की बात सार्थक जान पडती है कि खूँटी प्रधान नही है, कपडे प्रधान हैं। किसी भी विषय को आधार बनाया जा सकता है बशर्ते कि कुछ कहने के लिए हो। कहने का ढंग भी निबन्ध के मामले मे बहुत मानी रखता है। लक्ष्मीकान्त झा के पास वह है। और यही उनकी सबसे बडी विशेषता है।

३२. श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

श्री बेनीपुरी जी शब्दों के जादूगर है। 'नई धारा' के सम्पादकीय तक मे तबीयत को गुदगुदाने वाली, तबीयत फडक उठे ऐसी एक चमत्कारिकता लक्षित होती है। वे रेखाचित्र और संस्मरणनुमा निबन्ध लिखने मे बहुत ही सिद्धहस्त हैं। 'चक्के पर' शब्द-चित्र से यह अंश देखिए—

> "हडहड करती मोटर नदी के किश्तीनुमा पुल को पार कर रही थी। एक बच्चा नदी के किनारे बैठा आम चूस रहा था। हडहड सुनकर उसका ध्यान पुल पर गया और उसने देखा उसके ड्राइवर काका मोटर लिये आ रहे है।
>
> एक हाथ मे गुठली और एक हाथ मे छिलका लिये, मुँह मे आम के रस को कण्ठ के नीचे उतारते और होठ और गाल पर पीला रस चुहचोचे वह ऊपर दौडा और चिल्लाया—का-का ...."

थोड़े-से चुने हुए शब्दों मे एक बड़ा सूचक चित्र उपस्थित करना बेनीपुरीजी की विशेषता है। मेरे सन् १९३३ मे छपे पहले रेखाचित्र 'दानिश' और कहानी 'मोमबत्ती' का संशोधन उन्होंने ही किया था। तब वे खंडवा मे 'कर्मवीर' के सहसम्पादक थे।

'विद्यापति की पदावली' के सम्पादक तथा जयप्रकाशनारायण के संस्मरणों के लेखक श्री रामवृक्ष बेनीपुरी बिहार के साहित्यिक 'कर्मवीर' 'योगी' हैं। 'जनता' की भावना को उन्होंने अपनी लेखनी पर उतारा है। विचारों से समाजवादी होकर भी साहित्यिक सरसता की 'नई धारा' से वे अछूते नहीं है। आपके 'गेहूँ और गुलाब' ग्रन्थ में सुन्दर संस्मरणो के साथ-ही-साथ छोटे-छोटे शब्द-चित्र बहुत मार्मिक हैं। 'चक्के पर' उन्हीं मे से एक है। 'माटी की मूरतें' आपका विख्यात स्केच-संग्रह है। इस प्रकार के संस्मरणात्मक गद्य-शैली के धनी हिन्दी में सर्वश्री बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीराम शर्मा, सत्यवती मलिक, भदन्त आनन्द कौसल्यायन आदि अन्य बहुत थोडे लेखक हैं। बेनीपुरी

जीवनी भाषा-शैली मे भावोद्रेक के साथ आवश्यक विखरन के साथ ही शब्दों और वाक्य-खण्डो का संयत, गठा हुआ प्रयोग एक अनूठी व्यंजना निर्माण करता है।

बेनीपुरी जी की लेखन-शैली का दोष यह है कि पद्मसिंह शर्मा या चतुरसेन शास्त्री, 'उग्र' और ऋषभचरण जैन की भाँति वे कहीं-कही अति-भावुकता से शब्दो का और विराम-चिह्नो का अतिरंजित उपयोग करते है। यह ठीक है कि शैली मे नाट्यात्मकता उसे अधिक ग्राह्य बनाती है। परन्तु केवल वही हो और उसका अतिरेक हो तो सुरुचि को कभी-कभी ठेस भी पहुँचाने की सम्भावना रहती है। भावोच्छ्वसित होना कुछ विशेष क्षणों मे सम्भव है। सदा-सर्वदा व्यक्ति उस प्रकार की नाटयमयता से आप्लावित नहीं हुआ करता। यद्यपि बेनीपुरी की लेखन-शैली का विशेष गुण और यह नाट्य-मयता पर्यायवाची हो गए है फिर भी आधुनिक निबन्ध मे ऐसी उच्छल भावा-कुलता बहुत कुछ व्याख्यानात्मक (डिक्लेमेटरी) लगती है।

३३. यशपाल

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी और प्रगतिशील कहानीकार तथा उपन्यासकार यशपाल ने अपने 'चक्कर क्लब','बात-बात मे बात' आदि मे यद्यपि राजनीतिक व्यंग-भरे पत्रकारिता-प्रधान रहने वाले निबन्ध लिखे है, फिर भी उनके पास एक ऐसी सरल हृदयग्राही शैली है कि वे चाहे तो बहुत अच्छे निबन्ध लिख सकते है। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक भौतिकवादी, यथार्थवादी है और उन्हे चिकोटी काटने की आदत है। वह व्यगमयता उनकी शैली का एक विशेष अंग है। बहुत मज़े-मज़े में बात करते-करते वे न जाने कब उस बात-ही-बात मे गहरा मज़ाक कर जाते है। एक उदाहरण लीजिये—

"सुन लो, यह डिब्बे का गाना !"

"डिब्बे का गाना कैसा ?"—ठोडी उठा सर्वोदयी जी ने जिज्ञासु से प्रश्न किया।

"अरे भाई जैसे डिब्बे का दूध होता है"—मौजी रूमाल से नाक पोछते हुए बोले—"गैय्या विलायत में और दूध अपने घर मे ! गैय्या को बछडा दिखाकर पुचकारने की जरूरत नही। जब चाहा रात-बिरात डिब्बा खोल लिया, वैसे ही खुशामद की जरूरत नही, गाने वाली बम्बई-कलकत्ता मे रहे, आपका जी चाहा रिकार्ड लगा लिया।"

अपने हाथ का अखबार एक ओर रख मार्क्सवादी ने गम्भीरता से

कहा—"भाई, ग्रामोफोन और रेडियो से गरीब आदमियो का बड़ा भारी उपकार हो गया। पहले गाना, मुजरा रईसो और दरबारियो की ही चीज थी। हम तुम चाहते कि कोई कलावत हमारे लिए गा दे तो अपने बस की तो बात थी नही। अब गाने वाला चाहे एक गाने के सौ-पॉच सौ रुपये ले सकता है परन्तु आप चार पैसे का चाय का प्याला खरीदिये और गाना सुनिए मुफ्त मे! यह है विज्ञान की बरकत कि आवाज को गले से, गीत को गाने वाले से, कला को कलाकार मे अलग कर लिया।"

"लेकिन यह भी अमीरो के ही लिए है।" जिज्ञासु बोले—"गरीब आदमी बेचारा कहॉ ग्रामोफोन खरीद सकता है?"

इतिहासज्ञ ने भो हाथ का अखबार रख दिया और बोले—"गरीब आदमी ग्रामोफोन नही खरीद सकते, लेकिन सडक पर टहलते-टहलते गाना तो सुन सकते है। फर्ज कीजिए, अकबर-शाहजहॉ का जमाना होता। यह फिल्म मे गाने वाली बीबी जी शाही महल मे बन्द कर दी गई होती। हम और आप इनका गाना नही सुन पाते।"[१]

इसी तरह 'चक्कर क्लब' मे चाय की चुस्कियो पर खासे गहरे व्यंग यशपाल जी ने किये है। 'मन की ऑंखे खोल!' नाम से वे एक और स्तम्भ इसी प्रकार का 'जनयुग', 'रानी' आदि पत्रो मे लिखते रहे है। उनके पास एक आधुनिक निबन्धकार के लिए आवश्यक सब प्रकार का मसाला मौजूद है बशर्ते कि वे बहुत अधिक राजनीतिक दुराग्रह न रखे।

यशपाल ने आत्म-कथात्मक-सस्मरण ('सिहावलोकन' २ भाग) और प्रवास-वर्णन (लोहे की दीवार के इस पार, उस पार) भी बहुत रोचक ढंग से लिखे है। कभी-कभी एकाध कहानी-संग्रह की और उपन्यास की भूमिका भी बहुत मार्के की लिखी है। उनसे हिन्दी-निबन्ध को बडी आशाएँ है।

३४. भगवतीचरण वर्मा

'नवजीवन' दैनिक, 'विचार' साप्ताहिक और 'उत्तरा' मासिक के सम्पादक के नाते भगवतीचरण जी ने कई सुन्दर निबन्ध लिखे है जो कि सब पुस्तकाकार प्रकाशित नही हुए है। 'मुन्शी उल्फतराय' तखल्लुस से भी गहरे व्यंग्य और परिहास की चीजें उन्होने लिखी है ऐसा सुना जाता है। 'हमारी-उलझन' आपका एक ऐसा लघु निबन्धो का सग्रह पुस्तकाकार प्रकाशित है। इनमे दुनिया के लोगो के विचारो से भिन्न एक विरोधाभास-भरी, कभी शरा-

१. 'बात बात मे बात' पृ० ६८।

उलटबॅसियॉ-सी कहने वाली, सर्वसन्देहवादी, हल्की-फुल्की, विनोदी तबीयत के दर्शन भगवतीचरण जी ने कराये है। वे जब कहानियाँ लिखते हैं तो उनमे ऐसी व्यग के पुट वाली चीजे खासी मिलती हैं जैसे 'ल्वाय', 'एक पेग' और, 'एक चक्कर' है—'वर्ना हम भी आदमी थे काम के'-जैसे स्केच। व्यंग-चित्रो के चित्रण की ओर उनकी रुचि 'टेढे-मेढ़े रास्ते'-जैसे उपन्यास के साहित्यिक क्लब के वर्णन में भी परिलक्षित होती है।

उनके निबन्धो की सबसे बडी विशेषता उनकी लघुता, पैनापन और मार्मिकता है। वे दार्शनिक गम्भीर विचार भी ऐसे सहज भाव से सॅजोकर रख देते है कि वे दैनन्दिन व्यवहार की चीज जान पडते हैं। उनके निबन्धो से मुझे मराठी लघुनिबन्धकार अनन्त काणेकर के 'ठिव्याकर अन्धार' आदि निबन्ध-संग्रहो की याद हो आती है।

२५. भगवतशरण उपाध्याय

भगवतशरण उपाध्याय वासुदेवशरण जी की तरह पुरातत्त्वज्ञ, संस्कृतज्ञ और इतिहास के अध्येता है। परन्तु जहाँ वासुदेवजी की दृष्टि अतीतोन्मुखी और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की ओर है, भगवतशरण जी अपने विश्व-भ्रमण से और जीवन मे निरन्तर संघर्षशीलता से यह सीख पाए हैं कि इतिहास की द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से परिचालित प्रगतिशील व्याख्या ही सही व्याख्या है। इसी दृष्टिकोण से भगवतशरण जी ने 'खून के धब्बे 'इतिहास के पृष्ठो पर' और 'भारत की सस्कृति का सामाजिक विश्लेषण'-जैसे निबन्ध-संग्रह हिन्दी को दिये। भगवतशरण जी खण्डन-मण्डनात्मक लेखन मे भी अपना सानी नहीं रखते और चन्द्रबली पाण्डेय के बम्बई-हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-परिषद् से दिये भाषण का 'हंस' मे सचोट उत्तर 'मा निषाद'....' बहुत विख्यात है। उसी प्रकार से उनकी दो टूक समालोचनाएँ भी ऐतिहासिक महत्त्व की है। साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व, राजनीति-विषयक निबन्धों के अलावा उन्होंने 'वो दुनिया' आदि ग्रन्थो मे अपने प्रवास-वर्णन भी प्रकाशित कराये है। 'बुर्जियो के पीछे' ग्रन्थ मे इतिहास को पुन. वर्तमान क्रिया-काल में मूर्त कराने की सजीव चेष्टा उपाध्यायजी ने की है। यद्यपि उन्होंने विशुद्ध आत्म-निबन्ध कम लिखे हैं, परन्तु वे वैसे निबन्ध लिख सकते हैं ऐसा उनके किसी समय लिखे गए कई रिपोर्ताजो से स्पष्ट होता है। 'खून के छींटे' में शूद्र, नारी, लेखक आदि के आत्म-कथात्मक निबन्ध हिन्दी-निबन्ध-साहित्य के गौरव-चिह्न हैं।

४

हिन्दी-निबन्ध-कला का भविष्य

जब भी हम किसी साहित्य के बारे में या उसके विशिष्ट रूप-प्रकार के बारे मे बात करते हैं और भविष्य की सम्भावनाओं की चर्चा करते है तब उस भाषा की परम्परा और वर्तमान स्थिति को भूलकर नही चल सकते। हिन्दी मे, हम इस पुस्तक मे पीछे देख आए है कि निबन्ध बहुत पुराना नही है। भारतेन्दु-काल से समझे तो उसकी आयु एक शती के बराबर है। आरम्भ-काल मे काव्य-शास्त्र-विनोद के लिए निबन्ध लिखे जाते थे। लेखकों का अपना व्यक्तित्व था और उनके अपने अभिमत थे। बीच मे मुद्रण-यन्त्र का कुछ ऐसा विस्तार हुआ कि जैसे उस भारी बेलन की चपेट के नीचे सभी लेखक एक-से 'न्यूज़ प्रिंट' हो गए। प्रयत्नपूर्वक भाषा का ऊबड़-खाबड़पन, व्यक्ति-वैचित्र्यवाद को एक जैसा, समतल, 'यूनिफार्म' और स्टैण्डर्ड बनाया गया है। व्यक्ति जैसे लुप्त हो गया और 'टाइप' सिर्फ रह गया। किसी भी मतवाद के आत्मचिन्तक दुराग्रह मे ऐसा होना स्वाभाविक ही होता है, चाहे वह भाषा-शुद्धि या 'श्रमिकों की डिक्टेटरशिप' हो। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का और निबन्ध की उत्तम रचना का बहुत गहरा सम्बन्ध है।

आधुनिक काल में आकर जब मानव के मत-विश्वास खण्डितप्राय हो गए हैं, जब वह एक प्रकार के सर्व-संशयवाद से ग्रस्त है, जब उसकी अस्मिता में दरार पड़ गई है, जब उसका आत्म-ज्ञान एक प्रकार के शून्यज्ञान का पर्याय-वाची बन गया है, तब यह समस्या और तीव्रतर रूप से सामने आती है। मानव व्यक्ति कही समाधान नही पा रहा है। ये 'वाद', ये मत, ये विश्वास जैसे सब खोखले गुम्बद है; उनमे से वह अपनी ही अनुगूँज अलग-अलग रूपो में सुनता है। ऐसी दशा मे आंद्रे जीद के शब्दो मे वह आज का मानव "होटल नहीं तलाश कर रहा, पर मानो भूख खोज रहा है।" मन की इस दशा में सस्ते नुस्खे काम नहीं देते, अस्तित्व और अनस्तित्व की मूलग्राही

कशिश मानवात्मा को मथ डालती है। इस प्रकार की मनोदशा में स्वगत-भाषा से आत्म-टिप्पणी तक निबन्ध नामक साहित्य-प्रकार अधिक विकसित होता है। व्यक्तित्व के निर्माण और शोध के साथ-साथ निबन्ध-लेखन को भी अधिकाधिक मूल्य मिलता जायगा।

सो, हिन्दी के निबन्धकार के यदि आज के कोई अभाव है तो एक ओर वह स्थायी साहित्य और निरी पत्रकारिता के मूल्यो के बीच मे सन्तुलन खोता जा रहा है। क्या आलोचना के क्षेत्र मे और क्या निबन्ध के, मै शाश्वत मूल्यो की बात नही करता, पर चलतू-बाज़ारू हास्य या साधारणीकृत अतिसामान्य विचारो के परोसने और सापेक्ष रूप से अधिक स्थायी, रुचिकर, पौष्टिक और आनन्ददायिनी कला के बीच मे मौलिक अन्तर तो है ही। लेखकों के विजडी-करण की ऐसी हालत है कि आये दिन निकट भूतकाल से अपरिचित कई लेखन-क्षेत्र मे सहसा कूदकर नाम कमाने को उत्सुक क्षुद्र अहंताएँ साधना के अभाव मे अपने बौनेपन मे ही प्रसन्न है। यह आत्म-तुष्टि बहुत घातक है। और सबसे बडी कमी हिन्दी-निबन्ध-क्षेत्र मे मुझे इसी आत्म-निरीक्षण की जान पडती है। उसी कारण से परिहास की जैसी उच्च इयत्ता आव-श्यक है हिन्दी मे नहीं दिखाई देती। व्यंगविच्छित्ति (विट) और बौद्धिक सूक्ष्मता का परस्पर कार्य-कारण-सम्बन्ध है। हिन्दी में अभी भी (क्या गद्य और क्या पद्य मे) घोर वृथा भावुकता के दर्शन बराबर मिलते रहते हैं। यह गद्‌गदाश्रु उच्छ्वासाकुलता हमारी दृष्टि को धुँधला कर देती है, हमारे संकल्पों को रीढ़-हीन और लिबलिबा बनाती है। परन्तु भविष्यत् के प्रश्न अधिक कठोर और चट्टान-जैसे हैं। भविष्य की राह छायाहीन, पत्थरों की राह है।

इसी मनोभूमि के कारण भाषा-शैली पर भी प्रभाव अवश्य पडता है। गांधी-युग के लेखकों में से एक निबन्ध, हम यदि उठाकर देखे तो वहाँ भावु-कता संदीपित है, एक प्रकार का 'शैली का चारित्र्य' हमें देखने को मिलता है। उसमे एक शान्त, एकरस, प्रवाहमय धीर-गम्भीरता भी है। उदाहरण के तौर पर यह अंश 'संथाली मुरली' से देखिये—

> "मुरली का सुर बन्द हो गया और मेरे हृदय का सुर जाग उठा। हम मोटर मे बैठकर घण्टों दौडते रहे। टेकडियॉ देखी, नदियॉ लॉघी, झाडो और बादलों के दर्शन किये, सूर्यास्त को प्रणाम किया; किन्तु हृदय मे एक ही भाव भरा हुआ था। नया अवश्य लेंगे; लेकिन हृदय तो पीछे ही दौड रहा है। सब किस्म की कृतार्थता वही थी। वह आगे मिलने वाली नही है। भूत और भविष्य को एक करके जब वर्तमान काल को परास्त करेंगे, तभी यह गीत

शान्त होगा। तब तक सन्थालो की यह सनातन मुरली बजती ही रहेगी।"[१]

बात छोटी-सी है, पर काव्यपूर्ण ढंग से कही गई है। परन्तु जब यथार्थवाद आया, वह आदर्शवादी उदात्तता कम हो गई। जीवन के नग्न, ज्वलन्त प्रश्न सामने आये परन्तु हमारी मूल भावना वैसी ही रहने से ग्राम और नगर के जीवन मे, पहाड और मैदान के रेखाचित्रो मे जैसे अन्तर-सा आता गया। जो स्थानिक रग तूलिका मे भरा जाना आवश्यक था वह उतनी तीव्रता से नही आ सका। हमारा लेखक एक सजे-सजाए ड्राइंग-रूम का 'पेटी-बूर्ज्वा' लेखक बना रहा। वह अपने मन मे धुँधवाता रहा। समाजवाद-साम्यवाद की फिलासफी ने उनमे से किसी जन को क्षणिक सन्तोष भी दे दिया तो उसका लेखन धीरे-धीरे पत्रकारिता के प्रचार-पत्र तक पहुँचा। कभी कभी उनमे साहित्यिक छटा भी दिखाई दी। जैसे 'पहाडी कुली' का यह स्केच देखिये—

"वे मुँह-अँधेरे ही अपने मटमैले पहाडी गाँव से निकलते, पहाड की गोद से कोयला खोदते और धूप चढते-चढते नगर का रास्ता पकडते। मार्ग मे चुङ्गी का कर देते और जल्दी छूट जाने के लिए घूस, और दोपहर तक नगर मे पहुँच कोयला किसी व्यापारी के हाथ औने-पौने दाम लेकर बेच डालते। फिर खाने का कुछ सामान खरीद शाम को मन्द, थके पैर और शरीर लेकर लौटते। यह उनकी दिनचर्या थी।

हमने सोचा वह कोयला-मण्डित देव-स्वरूप कुली कोई बडा उल्लास मन मे ले घर पहुँचता होगा। कमल-सी पखुडियों-से बडे पलक वाली कोई रूपमती उसके स्वागत को आकुल हो बैठी होगी। धूलि-धूसरित तन लिये पुलकित बालक उसको उमंग से घेर लेते होगें।"[२]

निबन्ध मे आकर काव्य और गद्य के सर्वश्रेष्ठ पराग का एक प्रकार से सर्वोच्च संश्लेषण मिलता है। परन्तु हमने पूर्वविचार में देखा कि या तो कही काव्यात्मकता की ओर झुकाव अधिक हो गया है, या फिर गद्यमयता की ओर। यही बात कम-अधिक प्रमाण मे केवल व्यक्तिपरक निबन्धो पर ही नही, पर समालोचनात्मक निबन्धों के बारे मे भी कही जा सकती है। वहाँ भी एक ओर एकदम अतिरंजित शब्दावली मे एकदम निन्दा-स्तुति है। या फिर ऐसी चक्करदार अधकचरी दार्शनिक शब्दावली मे मीमांसाभास का तर्कदुष्ट यत्न कि पाठक के हाथ कुछ नही आता। निबन्ध स्केच नही है, संस्मरण नहीं है।

१. काका कालेलकर।

२. प्रकाशचन्द्र गुप्त।

पत्र नही है, गद्यकाव्य नही है, यात्रा-वर्णन नही है—और यह सब कुछ होकर भी वह इन सबका सार है। उसमे सबके साथ किये हुए सुहृद संलाप-का-सा आनन्द है। वह एकान्त मे नहीं, एकान्तिक भी कभी नही हो सकता। कुछ प्रयोग इस प्रकार के व्यंग-विनोद-भरे निबन्धो के इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी पुस्तक 'खरगोश के सींग' मे किये है। जिनकी भूमिकाओ मे दो विद्वान् लेखकों की शैली के दर्शन होते है, जो कि स्वयमेव छोटे निबन्ध बन गए है। सब पर हँसना आसान है लेकिन सब पर हँसते हुए, सबकी अच्छी बातो का रस ग्रहण करने का मार्मिक कार्य कठिन है। मै यह नही कहता कि मै सर्वथा सफल हूँ पर यत्न उस दिशा मे मैने गम्भीरता पूर्वक किया है।

सन् १६४४ मे परिवर्द्धित-संशोधित श्री श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी-साहित्य' मे स्पष्ट आत्म स्वीकृति है कि "हिन्दी मे अब तक निबन्धों का युग नही आया है। समालोचनात्मक निबन्धो के अतिरिक्त हिन्दी के अन्य सभी निबन्ध साधारण कोटि के है। पण्डित बालकृष्ण भट्ट और पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के निबन्ध हिन्दी की बाल्यावस्था के है। उनमे विनोद आदि चाहे जो कुछ हो, वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति नही हो सकते। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी के निबन्धो मे विचारो की योजना कहीं-कहीं विश्रृङ्खल हो गई है। द्विवेदीजी को सम्पादन-कार्य मे इतना व्यस्त रहना पड़ता था कि उनके स्वतन्त्र निबन्धो को देखकर हमे आश्चर्य ही होता है। भावात्मक निबन्ध लिखने वालो मे सरदार पूर्णसिह (सं० १६३८-१६८८) का स्थान सबसे अधिक महत्त्व का है, पर सरदारजी हिन्दी को छोड़कर अँगरेज़ी की ओर झुक गए और उनके केवल पाँच निबन्ध ही हिन्दी को प्राप्त हो सके। श्रीयुत गुलाबराय (जन्म सं १६४४) और श्रीयुत कन्नोमल के दार्शनिक निबन्ध भी साधारणतः अच्छे हुए है। निबन्ध के क्षेत्र मे पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का सबसे अलग स्थान है। मानसिक विश्लेषण के आधार पर उन्होने करुणा, क्रोध आदि मनोवेगो पर अनेक अच्छे निबन्ध लिखे हैं। विवरणात्मक निबन्ध-लेखकों ने यात्रा, भ्रमण आदि पर जो कुछ लिखा है, वह सब मध्यम श्रेणी का है। सारांश यह कि निबन्धो की ओर अभी विशेष ध्यान नही दिया गया है। हिन्दी-साहित्य के इस अंग की पुष्टि की ओर सुलेखको का ध्यान जाना चाहिए।"[1]

बाबू श्यामसुन्दरदास जी का उपर्युक्त कथन अब भी बहुत-कुछ अंशों

---

१. 'हिन्दी-साहित्य', पृष्ठ ३२६-३२७ पंचम संस्करण १६४६ इण्डियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग।

मे सही है। निबन्धो का प्रणयन अभी साधारण गति और साधारण ढंग से ही हो रहा है। यद्यपि कभी-कभी किसी 'कुट्टिचातन्' या विद्यानिवास मिश्र के 'छितवन की छाँह'-जैसे साहित्यिक-व्यंगमय विचार-छटात्मक निबन्धो के दर्शन हो जाते हैं, फिर भी वह कुल मिलाकर है बहुत थोडा। मेरे इस छोटे-से अध्ययन से निबन्ध-कला की ओर हिन्दी के नये लेखको और विद्यार्थियो का ध्यान अधिकाधिक खिचे और वे इसके गुण-दोष परखकर हिन्दी के उज्ज्वल, भविष्य के अनुरूप इस भांडार को अधिक समृद्ध बनावे, ऐसी इच्छा है। हमारे पूर्व सूरियों से हमे सीख इसी अर्थ मे लेनी है कि जो गलतियाँ उन्होंने जाने-अनजाने कीं उन्हीका हमें शिकार नहीं बनना है और विश्व-भर की प्रौढ और समुन्नत भाषाओं के साहित्य मे निबन्ध की जो प्रगति और जो प्रयोग हो रहे है उन्हे हिन्दी मे लाना है। अन्यथा केवल अतीतोन्मुखता से कार्य नहीं होगा, जैसे अतीत से कटकर एक नई जड-हीन विश्वामित्री सृष्टि बनाने का प्रयास भी हास्यास्पद है। हिन्दी के निबन्धो को इसी सर्वगम्य सर्व-ग्राही सर्वसाधारणोन्मुख दिशा मे बढाना है।